सम्पादकीय—

पुस्तक का विषय उपन्यास नहीं है, अपितु धार्मिक महागहन है और वर्तमान में प्राचीन आम्नाय का अभाव और साहित्य सामग्री की विरलता है तब इस प्रथम संस्करण में अनेक त्रुटियां रहें तो कोई आश्चर्य नहीं। मैंने यथामति जो कुछ प्राचीन सामग्री मिल सकी उसी पर से संकलन किया है। कल्पित कुछ नहीं है।
—शास्त्रीय क्रियाओं का प्रचार हो इस लिये लगभग १५० पृष्ठ होते हुए भी पुस्तक का मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है।

आप पुस्तक का प्रचार कैसे करें ?

प्रिय पाठको! आप २-४ जने गोष्ठी बनाकर इसकी स्वाध्याय चालू कीजिये, कम से कम सारी पुस्तक को १-२ बार पढ़ जाइये। पुस्तक में जहां जैसी क्रिया करने बावत उल्लेख है वहां रंगीन पेंसिल से कुछ हैसिया पर निसान बना दीजिये और क्रिया को स्वयं प्रयोग कीजिये तथा नोटकर लीजिये, फिर पुस्तक के सहारे सामायिक आदि चालू कर दीजिये।

मैं उदार चेता धर्मनिष्ठ भाई श्री मिश्रीलालजी कटारिया का विशेष आभारी हूँ जिनकी सातिशय प्रेरणा पाकर यह संकलन पर सका हूँ तथा स्थानीय श्री सम तभद्र दि० जैन विद्यालय के अधिकारियों का भी कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने छात्रों के पठनार्थ इस पुस्तक को कोर्स में स्थान दिया है दूसरी शिक्षा संस्थाओं से भी इसके अपनाये जाने की आशा करता हूं।

इस पुस्तक में अनुवाद में कहीं २ भाषा काठिन्य, रेखा चित्रों का अभाव आदि खामियां मेरे सामने हैं। प्रत्येक पाठक से अनुरोध है कि अपनी २ सम्मति, सुझाव और शंकाएं मेरे पास भेजने की कृपा करें। जिससे अगले संस्करण में सुधार हो सके। प्राप्त सम्मति भी प्रकाशित की जावेगी।

विनीत—दीपचन्द पांड्या

॥ श्री ॥

सामायिक पाठादि संग्रह

विधि सहित

प्राक्कथन विषय सूची आवश्यक परिचय सशोधनात्र
हिंदी अनुवाद प्रश्नोत्तरी आदि से अलंकृत।

संकलन कर्ता और अनुवादक
पं० दीपचन्द्र पांड्या जैन साहित्य-शास्त्री
पो० केकड़ी (अजमेर)

प्रकाशक
कुँवर मिश्रीलाल कटारिया जैन
श्री दि० जैन युवक संघ, केकड़ी (अजमेर)

प्रथमावृत्ति	श्रावणी पूर्णिमा	मूल्य लागत मात्र
१०००	वीर नि० संवत् २४८०	१० आना

मुद्रक श्री लालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रि० प्रेस, ब्यावर में छपा।

प्रकाशकीय वक्तव्य—

स्वर्गीय विद्यागुरु श्री प० मूलचन्दजी जैन सिद्धान्त शास्त्री केकडी निवासी की प्रबल उत्कंठा थी कि समाज में जैन संस्कृति की प्रतीक सामायिक आदि आवश्यक क्रियाएँ जो जीवन में उच्च आदर्श धार्मिक संस्कारों का आधान करती हैं और जो काल दोष से समाज से लुप्त हो चुकी हैं पुन अधिकाधिक रूप में प्रचार में आएँ। उन्होंने इसके लिए आज से २ वर्ष पूर्व तक स्थानीय समाज के नवयुवकों में सामायिक आदि का प्रचार किया था, सो तो अब तक भी यहा बराबर चालू है। परन्तु सर्व साधारण में उन क्रियाओं का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाया इसमें एतद्विषयक सर्वांगीण सरल पुस्तक का अभाव होना एक मात्र कारण बना हुआ था। अब हम प० दीपचन्दजी पांड्या शास्त्री के द्वारा तैयार कराकर यह सर्वांगीण सरल पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं इस सब का श्रेय प्रधानत गुरुवर्य को और पांड्याजी को है अत हम उन दोनों के महान आभारी हैं।

आज हमें यह 'सामायिक पाठादि संग्रह' पुस्तक पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है और साथ ही पूज्य मुनिवर्ग श्रावकवर्ग तथा जैनसंस्थाधिकारी सभी से हम यह आशा करते हैं कि वे सामायिक आदि की उपादेयता पर ध्यान देकर इन्हें समाज में अधिकाधिक प्रचार में लाने का प्रयत्न करेंगे।

इस संस्करण में जो कुछ त्रुटियां रह गई हों उनके लिए स्वाध्यायी पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि उन्हें अगले संस्करण में परिमार्जित कर दिया जाय।

श्रावणी पूर्णिमा
वीर सं० २४८०

निवेदक—
—कुंवर मिश्रीलाल कटारिया, केकड़ी

प्रकाशकीय वक्तव्य—

स्वर्गीय विद्यागुरु श्री प० मूलचन्दजी जैन सिद्धान्त शास्त्री केकड़ी निवासी की प्रबल उत्कंठा थी कि समाज में जैन संस्कृति की प्रतीक सामायिक आदि आवश्यक क्रियाएँ जो जीवन में उच्च आदर्श धार्मिक संस्कारों का आधान करती हैं और जो काल दोष में समाज से लुप्त हो चुकी हैं पुनः अधिकाधिक रूप में प्रचार में आएँ। उन्होंने इसके लिए आज से २ वर्ष पूर्व तब स्थानीय समाज के नवयुवकों में सामायिक आदि का प्रचार किया था, सो तो अब तक भी यहां बराबर चालू है। परन्तु सर्व साधारण में उन क्रियाओं का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाया इसमें एतद्विषयक सर्वांगीण सरल पुस्तक का अभाव होना एक मात्र कारण बना हुआ था। अब हम प० दीपचन्दजी पांड्या शास्त्री के द्वारा तैयार कराकर यह सर्वांगीण सरल पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं इस सब का श्रेय प्रधानतः गुरुवर्य को और पांड्याजी को है अतः हम उन दोनों के महान आभारी हैं।

आज हमें यह 'सामायिक पाठादि संग्रह' पुस्तक पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है और साथ ही पूज्य मुनिवर्ग श्रावकवर्ग तथा जैनसंस्थाधिकारी सभी से हम यह आशा करते हैं कि वे सामायिक आदि की उपादेयता पर ध्यान देकर इन्हें समाज में अधिकाधिक प्रचार में लाने का प्रयत्न करेंगे।

इस संस्करण में जो कुछ त्रुटियां रह गई हों उनके लिए स्वाध्यायी पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि उन्हें अगले संस्करण में परिमार्जित कर दिया जाय।

श्रावणी पूर्णिमा
वीर स० २४८०

निवेदक—
—कुंवर मिश्रीलाल कटारिया, केकड़ी

सहायक सज्जनों की शुभ नामावलिः—

जिनकी आर्थिक सहायता में यह प्रकाशन सम्पन्न हुवा।

१ कु० श्री मिश्रीमलजी शान्तिलालजी कटारिया
२ कु० कान्तिचन्दजी रूपचन्दजी कटारिया
३ श्री गुलाबचन्दजी चुन्नीलालजी कटारिया
४ ,, मिलापचन्दजी रतनलालजी कटारिया
५ ,, सुवालालजी प्रकाशचन्दजी कटारिया
६ ,, दीपचन्दजी मिश्रीलालजी पांड्या
७ ,, रतनलालजी भागचन्दजी गांधी
८ ,, सुगनचन्दजी बिरधीचन्दजी छाबड़ा
९ ,, माणिकचन्दजी रतनलालजी गदिया
१० ,, हेमराजजी प्रेमचन्दजी शाह
११ कु० श्री पन्नालालजी शान्तिलालजी बड़जात्या
१२ श्री अमोलकचन्दजी शान्तिलालजी गदिया
१३ ,, छोतरमलजी भंवरलालजी जैन अग्रवाल
१४ ,, मोहनलालजी सोहनलालजी जैन अग्रवाल
१५ ,, साधूलालजी फतहमलजी भाल
१६ ,, कल्याणमलजी भंवरलालजी छाबड़ा
१७ ,, शंकरलालजी गोरधनमलजी बज
१८ ,, चान्दमलजी बज
१९ ,, चांदमलजी गदिया

आदि आदि

प्राक्कथन

मुमुक्षु भव्य पुरुष का खास लक्ष्य महाव्रत धारण करने का रहता है। किन्तु, जब वह अपने को महाव्रतों के पालन में असमर्थ पाता है तब विवश हो एकदेश श्रावक के व्रतों को धारण कर लेता है। अभिलाषा उसकी वही मुनि बनने की रहती है और जिसके लिए वह गृही अवस्था में भी अभ्यास करता रहता है। गृहस्थ के द्वारा प्रतिदिन सामायिक किया जाना यह उसी लक्ष्य तक पहुँचने का अभ्यास ही है।

सामायिक की महिमा

सामायिक करना केवल मुनियों के लिये ही आवश्यक नहीं बतलाया है श्रावक के लिये भी उसके करने का विधान है। मूलाचार ग्रंथ में कहा है कि —

> सावज्जजोगप्परिवज्जणट्ठं
>
> सामाइयं केवलिहिं पसत्थं।
>
> गिहत्थ धम्मोऽपरमो त्ति णच्चा
>
> कुज्जा बुहो अप्पहियं पसत्थं।

गृहस्थ का धर्म अपरम है-हीन है क्योंकि गृहस्थ जीवन में आरम्भ परिग्रह जनित हिंसा आदि सावद्य दोष हमेशा लगते रहते हैं इसलिये सावद्य योगों से छुटकारा पाने के हेतु केवल-ज्ञानियों ने 'सामायिक' को ही प्रशस्त उपाय बतलाया है ऐसा जानकर ज्ञानी गृहस्थ को सामायिक रूप प्रशस्त आत्म कल्याण हमेशा करना चाहिए।

स्वामी समन्तभद्र ने भी 'व्रत पञ्चक परिपूरण कारणं अवधानयुक्तेन' पद से गृहस्थों के लिये सामायिक को पंचव्रतों की पूर्णताका कारण बतलाते हुए कहा है कि 'चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ।'—सामायिक करते समय गृहस्थ ऐसे यतिभाव को प्राप्त हो जाता है जैसे मुनि पर वस्त्र डाल कर उपसर्ग कर दिया हो ॥

मूलाचार में भी इसी आशय को व्यक्त किया है यथा —

सामाइयम्मि दु कदे समणो इव सावओ हवदि जम्हा ।
एदेण कारणेण दु बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥१॥

—षडावश्यकाधिकार

सामायिक में एकाग्र होने वाला श्रावक भी संयमी मुनि तुल्य हो जाता है, इस कारण श्रावक को सामायिक में अवश्य प्रवर्त्तना चाहिए ।

इसी गाथा की वसुनन्दि सैद्धान्तिक कृत संस्कृत टीका में लिखा है कि- किसी एक श्रावक ने चतुर्दशी के दिन श्मसान में जाकर सामायिक धारण किया । उस समय उस पर देवकृत घोर उपसर्ग हुए तो भी वह सामायिक से च्युत नहीं हुआ और उपचार से श्रमण कहलाया ।

कथा ग्रन्थों में श्रावकों के सामायिक करने की और भी कई कथायें आती हैं । एक कथा का उल्लेख स्वयं मूलाचार के कर्त्ता ने ही इस प्रकार किया है —

सामाइए कदे सावएण विद्धो मओ अरण्णम्मि
सो य मओ उद्धादो ण य सो सामाइयं फिडिओ ।

—षडावश्यकाधिकार

अर्थात् कोई श्रावक वन में सामायिक कर रहा था। उस वक्त किसी शिकारी ने मृग पर बाण मारा। वह मृग श्रावक के चरणों के समीप आकर तड़फड़ाता हुआ मर गया। तो भी श्रावक ने सामायिक को नहीं छोड़ा—संसार के स्वरूप का विचार करता हुआ सामायिक में ही तत्पर रहा।

दि० जैनों मे सामायिक परंपरा का लोप

जिस सामायिक की शास्त्रकारों ने इतनी प्रशंसा की है और जिसका किया जाना गृहस्थों के लिए बड़ा हितकारी और उपयोगी बताया गया है। खेद है, कि काल दोष से और दि० जैन श्रमण परंपरा के विच्छिन्न हो जाने से उस सामायिक की परिपाटी इस समय दि० जैन समाज के गृहस्थों में उठ सी गई है। जब कि श्वेताम्बर समाज में सामायिक का प्रचार अद्यावधि भी काफी मात्रा में पाया जाता है। सामायिक का पुनः प्रचार न हो सकने के कारणों में यह भी एक कारण हो सकता है कि इस विषय की कोई ऐसी अच्छी पुस्तक प्रकाश में नहीं आपाई है कि जिसमें सामायिक के पाठों का और उसकी क्रिया विधि का विवेचन व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध किया गया हो।

प्रस्तुत संस्करण और उसकी विशेषता

पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि श्रीमान् पं० दीपचन्दजी पाण्ड्या शास्त्री केकड़ी निवासी का ध्यान इस ओर गया व इन्होंने चिरकाल तक इस विषय के शास्त्रों का मनन और आलोडन करके सामायिक पाठ सम्बन्धी यह प्रस्तुत संस्करण तैयार किया जो आपके समक्ष मौजूद है।

इस पुस्तक में दि० जैन मूलसंघकी प्राचीन परम्परा के अनुसार सामायिक प्रतिक्रमण के संस्कृत प्राकृत पाठों का शुद्ध रूप देने में भरसक प्रयत्न किया गया है और प्रत्येक पाठ का हिंदी अर्थ भी दे दिया है जिससे सामायिक करने वाले को यह पता लग सके कि जिस पाठको मैं बोल रहा हूं उसका यह अर्थ होता है। इस पुस्तक में प्रत्येक क्रिया विधि को ऐसा खोल खोल कर समझाया गया है कि जिससे पाठ करने वाले को किसी प्रकार का असुविधा का सामना न करना पड़े। और भी कई विशेषताएं इस पुस्तक में दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख करना यहा उचित होगा —

१-छह आवश्यकों की विधि और उनके स्वरूप को बोल चाल की भाषा में दे कर प्रतिपाद्य विषय को सुबोध बना दिया है।

२-सामायिक आदि छहों आवश्यकों का प्रत्येक का स्वतन्त्र विधान स्पष्ट करके बतलाया गया है।

३-आगार सूत्र का पाठ जो वीरभक्ति की आलोचना (आंचली) में ही घुल मिल रहा था और जिसे अलग से नहीं बोला जाता था अलग प्रतिपादित कर दिया गया है इसे कायोत्सर्ग करने के पूर्व बोलना चाहिए।

४-चत्तारि मंगल—आदि दंडक पाठ जो नित्य नियम पूजा पाठ आदि कई छोटी मोटी पुस्तकों में प्राय अशुद्ध लिखा मिलता है—शुद्ध करके लिखा गया है।

५-चैत्य भक्ति संग्रह के अन्तर्गत पाठों का नवीन नामकरण किया गया है।

६-श्रावक प्रतिक्रमण के अन्तर्गत सामान्य दोषों की आलोचना का विधान मूलाचार ग्रन्थ के अनुसार किया गया है। (देखो पृष्ठ ६४)

'श्रावक प्रतिक्रमण क्रियाकलाप' आदि मुद्रित और लिखित दूसरे ग्रन्थों में जो प्रतिक्रमण सम्बन्धी चार कृतिकर्मों की कृत्य विज्ञापना का नाम करण अधूरा पाया जाता है तथा उनमें प्रतिक्रमणभक्ति और वीरभक्ति की आलोचना (अंचली) का पाठ भी अस्त व्यस्त पाया जाता है यह सब यहां शुद्ध पूर्ण कर दिया गया है।

८-निसीहिया भक्ति का पाठ भी प्राचीनतम प्रतियों के आधार से संशोधित करके रक्खा गया है।

९-प्रतिक्रमण के अतिचार—पाठों की सरणि तत्त्वार्थसूत्र में प्रतिपादित क्रम से दी दी गई है।

१०-प्रतिक्रमण के चौथे कृतकर्म में शांतिभक्ति का पाठ होना जरूरी है, पर दूसरे ग्रंथों में समाविष्ट नहीं हुआ है सो यहां यथास्थान समाविष्ट कर दिया गया है।

—अलावह इसके प्राचीन से चले आरहे पाठों में कहीं कुछ व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से शाब्दिक परिवर्तन भी किये गये हैं।

उपसंहार

किसी भी ग्रन्थ को पढ़ते हुए उसमें किन्ही अशुद्धियों को पाठक सहज से ताड़ जाते हैं और कह उठते हैं कि 'यहां इस वाक्य या अक्षर के स्थान में अमुक वाक्य या अक्षर होना

चाहिए आदि कुछ ऐसी आपकी विलक्षण प्रतिभा है। इस प्रतिभा का उपयोग आप इस संकलन में भी कहीं कहीं किये बिना नहीं रह सके हैं।

पुस्तक को मैंने सरसरी तौर पर देखा है, इसलिये इस पर मैं और अधिक कुछ नहीं लिखना चाहता। विशेषज्ञ विद्वान् ही विषय के अन्तस्तल तक पहुँच कर कथन के औचित्य किंवा अनौचित्य पर प्रकाश डाल सकते हैं। मैं तो इतना ही लिखना पर्याप्त समझता हूँ कि पं० दीपचन्दजी साहब ने इस पुस्तक के संकलन तथा सम्पादन में काफी श्रम किया है और पुस्तक को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी है। उसके लिए आप बहुत २ धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि इस पुस्तक का घर घर में प्रचार होकर लुप्त हुई सामायिक की परिपाटी का पुन उद्धार होवे।

इति शम्

सौभाग्य दशमी
२४८० वीर निर्वाण गताब्द

—मिलापचन्द कटारिया
केकड़ी (अजमेर)

अथ आवश्यक कर्म परिचय

अनासक्तधियः शश्वद्विधिमावश्यकं स्वयम्
जिनेन्द्रोक्त परं तत्त्व प्रपश्यन्त्यतिश्रद्धया ।

भोगों में अनासक्त बुद्धि वाले सरल परिणामी पुरुष जिनेन्द्र भाषित उत्कृष्ट तत्त्व आवश्यक कर्म को स्वय निरन्तर अतीव श्रद्धा से देखते हैं-छह आवश्यकों का पालन करते हैं। कहा भी है कि—

आदहिदं कादव्वं जं सक्कइ परहिद पि कादव्वं ।
आदहिद-परहिदादो आदहिद सुट्ठु होदि कादव्वं।

आत्मकल्याण कीजिये, बन सके तो परकल्याण भी कीजिये। आत्महित परहित दोनों का युगपत्समवाय होते-दोनों में प्रथम कर्त्तव्य क्या है? ऐसा बुद्धिद्वैध होते आत्मकल्याण को ही भले प्रकार करना चाहिए। व आत्म हितके कार्य आवश्यक कर्म हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है —

आवश्यक किसे कहते हैं ?

जो आत्मार्थी भव्य पुरुषों के अवश्य करने योग्य क्रिया हो उसे आवश्यक कहते हैं, अथवा जिस क्रिया के करने से आत्मा पाप कर्मों से छूटे उसे आवश्यक कहते हैं।

आवश्यक के ६ भेद हैं-सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग।

सामायिक किसे कहते हैं ?

नियत देश तथा नियत समय के लिये सारे सावद्य योगों को (हिंसा आदि पाचा पापों को) मन वचन काय से त्याग करना सो श्रावकों के सामायिक है। सामायिक करते समय साधक को चार शुद्धियों पर ध्यान देना चाहिए। द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि ये ४ शुद्धियां है।

चार शुद्धियों का खुलासा:—

द्रव्य शुद्धि म मयूरपिच्छी या कोमल उपकरण, चटाई और बिना सिले हुए वस्त्र तथा स्वाध्यायोपयोगी ग्रन्थ व जपमाला आदि इष्ट हैं। क्षेत्र शुद्धि से तेज हवा वर्षा, पशु पक्षियों और डाँस आदि जीवों से रहित निर्बाध निराकुल स्थान चैत्यालय सूने घर, गुफा वन आदि एकान्त पवित्र प्रदेश लेने चाहिये। काल शुद्धि से मुख्यत तीनों सध्याकाल प्रात' साय और मध्याह्न का ग्रहण उपयुक्त हैं वैसे शुभ कार्यों म समय की कोई पावदी नहीं है। भावशुद्धि स-विकथा, क्रोध आदि कषाय भाव, प्रमाद आलस्य और निद्रा आदिका त्यागना इष्ट है।

विशेष—साधक को सासारिक कार्यों में व्यासंग (मन का लगाव) अति मात्र भोजन राजसी और तामसी व गुरु भोजन अति चिंता का परित्याग करना चाहिए।

स्तव किसे कहते हैं ?

चौबीस तीर्थंकरों का थोस्सामि दडक या 'लोगस्स' पाठ

आदि स्तोत्रों के द्वारा भाव पूर्वक गुण स्मरण करना उसे 'स्तव' या 'चतुर्विंशति स्तव' कहते हैं।

स्तव करते समय भव्य को शरीर और स्थान की कोमल उपकरण से प्रतिलेखना करके दोनों चरणों के चार अगुल प्रमाण अंतराल (फासला) रखते हुए और अजलि मुद्रा लिये सीधे खड़े होना चाहिए।

वंदना किसे कहते हैं ?

पांचों परमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवचन, चैत्य और चैत्यालय इन नव पद का प्रत्येक का गुणस्मरण करना उसे वदना कहते हैं।

वदना में योग्य विधि विधान—

योग्य-काला-ऽऽसन-स्थान-मुद्राऽऽवर्त शिरो-नति
विनयेन यथाजातः कृतिकर्माऽमल भजेत्

—अनगारधर्मामृत

१—काल तीनों सध्या काल को कहते हैं।

२—आसन दोनों पैरों के लगाव या बधन विशेष को कहते हैं। आसन दो प्रकार का है—उद्भासन और उपविष्टासन दोनों पैरों के चार अगुल प्रमाण अंतराल रखते हुए खड़े होना सो उद्भासन होता है। पद्मासन सुखासन और वीरासन के भेद से उपविष्टासन के तीन भेद हैं। आसन में दोनों तलुवे घुटनों के नीचे दबे हों तो पद्मासन होता है। दोनों तलुवे घुटनों के

ऊपर रखे जाने पर वीरासन होता है और बांये घुटने पर दाहिने पैर का तलुवा रख कर बैठने से सुखासन होता है।

३-स्थान ऊपर क्षेत्र शुद्धि में वह आये है वहा से जानलेवें।

४-मुद्रा—दोनों हाथों के प्रभाव या बन्धन विशेष को कहते हैं। मुद्रा यहां चार मानी हैं। १ जिनमुद्रा योग मुद्रा वदना मुद्रा या अञ्जलि मुद्रा और शुक्तिमुद्रा या मुक्ताशुक्तिमुद्रा।

दोनों हाथों को घुटने पर्यन्त सीधे लटका देना सो जिन-मुद्रा है। दोनों हथेलियों को चित करके जमा देना सो योग मुद्रा है। कटोरी या खिला हुआ कमल या पत्र पुट (दौना) की भांति अंगुलियों को सटाकर हाथों को बांधना सो अञ्जलि मुद्रा है।

और अपने दोनों हाथ जोड़ लीजिये फिर दोनों अंगूठे बीच में डालिये और इस तरह पोत दीजिये कि हाथों का आकार जुड़ी सीप जैसा या फूल की कली-सा बन जाय यह शुक्ति मुद्रा होती है। योग मुद्रा में उपविष्टासन और शेष तीनों मुद्राओं में खड्गासन ही होता है।

५-दोनों हाथों को जोड़ कर प्रदक्षिणा रूप घुमाना सो आवर्त है।

६-दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करना सो प्रणाम या शिर है।

७-भूमि को स्पर्श करते हुए हाथ जोड़ कर ढोक देना सो नति है।

कृतिकर्म किसे कहते हैं ?

'सामायिकस्तव—पूर्वक कायोत्सर्ग चतुर्विंशतिस्तवपर्यन्त 'कृतिकर्म' इत्युच्यते।—मूलाचार टीका

१ नमस्कार मंत्र, २ चत्तारिमंगलं दंडक पाठ, ३ अट्ठाइज्ज दीव-कृति कर्म पाठ ४ करेमिभंते सामाइय पाठ ५ आगार सूत्र पाठ ये पांच पाठ पढ़ना सो सामायिक स्तव है फिर ६ कायोत्सर्ग (नौ बार जाप देना) और ७ चतुर्विंशतिस्तव ('थोस्सामि इ-आदि आठ गाथाएं') पढ़ना सो एक कृतिकर्म कहलाता है।

ऐसे कृतिकर्म सामायिक में एक वंदना में दो स्वाध्याय में तीन और प्रतिक्रमण चार पढ़े जाते हैं।

कृतिकर्म में चार विधान

दुओणद जहाजाद बारसावत्तमेव य
चदुस्सिर तिसुद्ध च किदियम्म पउजदे।

सामायिक स्तव की आदि में तीन आवर्त एक प्रणाम करना। सामायिक स्तव के अन्त में तीन आवर्त एक प्रणाम और एक ढोक करना फिर कायोत्सर्ग करना पीछे चतुर्विंशति स्तव की आदि में तीन आवर्त और एक प्रणाम करना और 'स्तव' पढ़ चुकने पर तीन आवर्त एक प्रणाम और एक ढोक देना चाहिये।

कृतिकर्म (वन्दना) के ३२ दोष

वन्दना करते समय जो—

१ अनादर भाव से वंदे सो 'अनादृत' दोष है। २-अकड़ करखड़ा होवे सो 'स्तब्ध' दोष। ३ वंद्य के अति समीप स्थित होवे सो 'प्रविष्ट'। ४ घुटनों और कुहनियों को आपस में मिलावे सो 'परिपीडित'। ५-शरीर को इधर उधर झुलावे सो 'दोलायित'।

६ अंकुश की भांति दोनों हाथ करे सो 'अंकुशित'। ७-कछुवे की भांति अंगों को सिकोड़े सो 'कच्छपरिंगित'। ८ मछली की भांति पार्श्वभाग से प्रणाम करे सो 'मत्स्योद्वर्त'। ९ वन्द्यके प्रति दुष्ट भाव रखे सो 'मनोदुष्ट'। १० दोनों कुहनियों से अपनी छाती को दबावे सो 'वेदिका बद्ध'। ११ गुरु आचार्य से घबराया जावे सो 'भय'। १२-गुरु आचार्य से डरे सो 'भयभाम्'। १३ मैं संघ पूज्य बनूं' ऐसा भाव रखे सो 'ऋद्धि गौरव'। १४ अपने को ऊंचा माने सो 'गौरव'। १५ छिपकर वंदना करे सो 'स्तेनित'। १६-गुरु आज्ञा को भंग करे सो 'प्रत्यनीक'। १७-कलह विसंवाद करके क्षमा नहीं करे सो 'प्रदुष्ट'। १८-दूसरे साथियों को धमकावे सो 'तर्जित'। १९ शास्त्रीय पाठ न बोलकर बातें करे सो 'शब्द'। २०-पाठ पढ़ते हंसी मजाक करे सो 'हीलित'। २१-कटि, गरदन और हृदय पर बल (सलवटें) डाले सो 'त्रिवलित'। २२ भौंहें चढ़ावे सो 'कुंचित' २३-इधर उधर देखे सो 'दृष्ट'। २४ देव या गुरु के सम्मुख खड़ा न रहे सो 'अदृष्ट'। २५-वंदना करने को इजत (बेगार) समझे सो 'संघकर मोचन'। २६-उपकरण आदि पाकर तो वदना करे सो 'आलब्ध'। २७ उपकरण आदि की चाहना से वदना करे सो 'अनालब्ध'। २८-पाठ और विधि में कमी करे सो 'हीन'। २९ आलोचना आदि पाठों में विलम्ब करे सो 'उत्तरचूलिक'। ३०पाठ को स्पष्ट न बोलकर मन में गुण सो 'मूक'। ३१-पाठ को ऐसा जोर से बोले कि दूसरों के पाठ आदि में विघ्न (भंग) पड़जाये सो 'दर्दुर'। ३२ भैरवी कल्याण आदि रागों से स्वर साधकर पाठ पढ़े सो 'सुललित' दोष है।

कृतिकर्म में इन बत्तीस में से एक भी दोष लगावे तो निर्जराका फल नहीं मिलता है ऐसी जिनाज्ञा है।

प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

'मैं पूर्व कृत दोषों को निंदता हूँ, गर्हा करता हूँ मेरे दुष्कृत मिथ्या हों' ऐसा कहकर मन वचन काय से दोषों को शोधना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रति क्रमण के ७ भेद।

१-इरियावही—मार्ग में चलने में लगे दोषों का किया जाता है।

२-देवसिय—दिन में लगे दोषों का होता है और सायंकाल को किया जाता है।

३-राइय—रात में लगे दोषों का होता है और प्रभात को किया जाता है।

४-पक्खिय-पन्द्रह दिनों में लगे दोषों का होता है। जो प्रत्येक चतुर्दशी को किया जाता है।

५-चाउम्मासिय—चार महीनों में लगे दोषों का होता है जो आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुण मास की सुदि चतुर्दशी को किया जाता है।

६-सवच्छरिय—बारह मासों में लगे दोषों का होता है जो भाद्रपद सुदि चतुर्दशी को किया जाता है।

७-उत्तमट्ठ—जीवन भर में किये दोषों का होता है और सल्लेखना लेते समय किया जाता है।

प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

आगामी समय के सम्वि दोषों को दूर करने के लिए जो वर्तमान में त्यागने रूप प्रतिज्ञा करना उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रत्याख्यान में नियम रूप त्याग—

अपने इष्ट निरवद्य भोगोपभोग के साधनों का काल की मर्यादा लिये प्रत्याख्यान लेना सो नियम रूप त्याग है— जिसका खुलासा इस प्रकार है —

भोजन वाहन शयन स्नान पवित्राग राग कुसुमेषु ।
ताम्बूल वसन भूषण मन्मथ संगीत गीतेषु ॥८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तु रयन वा ।
इति कालपरिच्छित्या प्रत्याख्यान भवेन्नियमः ॥८६॥

भोजन, सवारी, सेज, स्नान, शुद्ध शृंगारकी सामग्री, फूलें, ताम्बूल, कपड़े, गहने, मैथुन, नृत्यवाद्य और गीत का समुदायरूप संगीत और गीत इन इष्ट पांचों इन्द्रियों के विषयों में आज के दिन आज की रात्रि पक्ष मास ऋतु (दो मास) और अयन (छह मास) तक समय के विभाग से त्याग लेना नियम होता है।

अनियत कालिक प्रत्याख्यान—

वायुयान या जल पोत में बैठते समय तथा शयन करते उपद्रव ग्रस्त महावन दुर्गम पर्वत नदी और जलाशय में प्रवेश करते समय या रोगादि की अवस्था में 'मैं अमुक स्थान आदि से पार न होजाऊं' तब तक मेरे आहार आदि का त्याग है इस प्रकार कार्य की मुख्य अपेक्षा रख कर प्रत्याख्यान करना सो अनियत कालिक प्रत्याख्यान कहलाता है।

प्रत्याख्यान का महत्त्व—

दैवादायुर्विरामे स्यात् प्रत्याख्यान-फलं महत् ।
संस्मृत्य गुरुनामानि कुर्यान्निद्रादिकं विधिम् ॥

दैव सयोग वश नियम लेने बाद जीवन का अन्त हो जाय तो त्याग का महान् फल होता है। इसलिए

पच नमस्कार को चिंतवन करके प्रत्याख्यान लेकर निद्रा आदि कार्य करना चाहिए—

आगामी में प्रत्याख्यान के फल की सूचक कई कथाएं वर्णित है जिनमें से एक कथा यशस्तिलक चपू में इस प्रकार है—

उज्जयिनी नगरी में एक चांडाल ने मृत्यु से पूर्व थोड़ी देर के लिए ही मांस भक्षण के त्याग का नियम लिया था सो मर कर यक्ष हुआ।

कायोत्सर्ग किसे कहते हैं।

नियत समय तक शरीर से ममत्व छोड़ कर नमस्कार मंत्र का ध्यान करना सो कायोत्सर्ग है।

पाठ जप और ध्यान का खुलासा

'पाठ' सब सुन सके परन्तु दूसरों के धार्मिक कृत्यों में बाधा न पड़े ऐसे स्वर से बोलना चाहिए। और खुद तो सुन सके पर पास में बैठे लोग नहीं सुने ऐसे मन्त्र का बोलना सो 'जप' है इसे उपांशु पाठ भी कहते हैं। तथा माला अगुलि के पर्व आदि की सहायता के बिना उच्छ्वास विधि से नमस्कार के चिंतन को ध्यान या कायोत्सर्ग कहते हैं।

जप विधि—

वचसा या मनसा वा कार्यो जाप्यः समाहितस्वान्तैः
शतगुणमाद्ये पुण्यं सहस्रसङ्ख्यं द्वितीये तु ।

यशस्तिलक ।

एकाग्रचित्त हो कर जाप्य कीजिये । वचन से जाप्य करने में सौ गुणा पुण्य होता है और मन से जाप्य करने में हजार गुणा पुण्य है ।

ध्यान की विधि—

सूक्ष्मप्राणयमायामःसन्नसर्वाङ्गसंचरः ।
प्रावोत्कीर्ण इवासीत ध्यानानन्दसुधा लिहन्

—यशस्तिलके सोमदेव ।

पहले सांस खींच कर श्वासोच्छ्वास लेने की क्रिया को साध कर सूक्ष्म कर लीजिये । जिसस चेष्टावाहिनी नाड़ियों में गति मंद होकर सर्वांग का बाहिरी सचार स्तब्ध होगा । शरीर में एक प्रकार की पूर्वापेक्षा लघुता प्रतीत होगी । शरीर में ऐसी निश्चलता होगी, मानो ध्यानी प्रस्तर में उकेरा हुआ-सा है । तब ध्यान की अनन्द सुधा का परम आस्वाद मिलेगा ।

उच्छ्वास की विधि क्या है ?

पहले उच्छ्वास में *'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं'* इन दो पदों को दूसरे उच्छ्वास में *'णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं'* इन दोपदों को और तीसरे उच्छ्वास में *'णमो लोए सव्वसाहूणं'* पद का उच्चारण करना यह णमोकार मंत्र की जाप्य विधि है।

वन्दना–प्रयोगानुपूर्वी ।

यदि जिनालय में जाकर चैत्यवन्दन करना हो तो उसका क्रम आगे (पृष्ठ १६-२८ पर) देववन्दन–चैत्यवन्दन प्रयोगानुपूर्वी में सविस्तार लिखा है तदनुसार पाठ पढ़े ।

प्रतिक्रमण प्रयोगानुपूर्वी ।

यदि दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण करना हो तो उसका क्रम यह है,

१–(पृष्ठ ३ से ६) इरियावही आलोचना पर्यन्त सब पाठ पढ़ें ।

२–फिर (पृष्ठ ५७ से ६०) वृहत्सिद्धभक्ति पर्यन्त सब पाठ पढ़ें ।

३–फिर (पृष्ठ ६३) सिद्धभक्ति आलोचना पाठ पढ़ें ।

४–फिर (पृष्ठ ६४ ६५) आलोचना पाठ पढ़ें ।

५–फिर (पृष्ठ ६७ से ७७) 'इति प्रतिक्रमण पाठी' तक के सब पाठ पढ़ें । यदि कोई 'प्रतिक्रमण पाठी' के स्थान पर हिन्दी में प्रतिक्रमण पाठी (पृष्ठ ७७ से ८२) पढ़ना चाहे तो पढ़ले ।

६–फिर (पृष्ठ ८३ से ६१) वीर चारित्र भक्ति तक के पाठ पढ़े

७–फिर (पृ० ६२) शान्ति०भक्ति कृत्यविज्ञापना पढ़े ।

८–फिर (पृ० ६२ से ६६) शान्तिभक्ति समूह के पाठों में से कोई एक पाठ पढ़े ।

६–फिर चतु० तीर्थंकरभक्ति समूह के पाठों में से कोई एक पाठ पढ़े ।

१०–फिर (पृ० ६६ से १०१) शांति० भक्ति आलोचना से लेकर

समाधिभक्ति की कृत्य विज्ञापना तक पढ कर ६ जाप देवे।
११-फिर (पृ० ४० से ४५) समाधिभक्तिपाठ पढ कर 'असही' तीन बार बोलें इस प्रकार प्रतिक्रमण समाप्त करे।

प्रत्याख्यान आनुपूर्वी

प्रत्याख्यान ग्रहण करना हो तो पृ० १०२ में लिखी विधि से करे।

कायोत्सग आनुपूर्वी

(पृष्ठ १-२) 'काउस्सग्गं मोक्खपह'– आदि तीन गाथाएं पढे

(पृष्ठ १०) आगार सूत्र पढें फिर शक्त्यनुसार ध्यान या जप करें।

सर्व आवश्यकानुपूर्वी

एक साथ सब आवश्यक कर्मों के करने का क्रम इस प्रकार है—

१-(पृ० ३ से ६) 'निसही' से इरियावही आलोचना तक के पाठ पढे।

२-फिर (पृ० २४-२५) देववन्दन विज्ञापन और चैत्यभक्ति कृत्य विज्ञापना पढें।

३-फिर (पृ० ६ से १३) कृतिकर्मसंग्रह के चतुर्विंशति स्तव पर्यन्त सातों पाठ पढ़ें।

४- फिर (पृ० २६ से ४०) चैत्यभक्ति संग्रह के छहों पाठ और चैत्यभक्ति की आलोचना पढे।

५-फिर (पृ० ४१ से ४३) पंचगुरु भक्ति की कृत्य विज्ञापना पढ़ कर क्रम नंबर ३ के अनुसार कृतिकर्म के ७ पाठ पढ कर पंच गुरुभक्ति प्राकृत और पंचगुरु भक्ति की आलोचना पढें।

६-फिर (पृ० ४७ से ७७) प्रतिक्रमण पीठिका से लेकर प्रतिक्रमण पाटी तक पढ़ें।

७-फिर (पृ० ८३ से ६१) प्रति० निसीहिय भक्ति आलोचना से लेकर वीर चारित्र भक्ति की आलोचना पर्यन्त पाठों को पढ़े।

८-फिर (पृ० ६२ से १००) शान्ति चतु० भक्ति की कृत्य विज्ञापना पढ़ कर शान्तिभक्तिसंग्रह का और चतुर्विंशति तीर्थङ्कर भक्ति का कोई एक एक पाठ पढ़े।

६-फिर (पृ० ६६ १००) शान्ति भक्ति की आलोचना और प्रतिक्रमण आलोचना पाठ पढ़े।

१०-फिर (पृष्ठ १०२ से १०३) प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग को स्वीकार करके नो बार जाप्य देवें।

११-फिर समाधिभक्ति की कृत्यविज्ञापना इस प्रकार पढी जाय।

'अथ देववन्दना प्रतिक्रमणं षडावश्यक कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादि दोषविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्'—

१२-फिर (पृ० १०) आगार सूत्र पढ कर नौ बार जाप्य देवें।

१३-फिर (पृष्ठ ४० से ४३) समाधि भक्ति संग्रह पाठ समाधिभक्ति आलोचना और तीन बार आलोचना पढ़ें।

वन्दना में दो बार और प्रतिक्रमण में चार बार कृति कर्म पाठ यथा स्थान बोलना न भूलें। इति ॥

विषय-सूची

समुच्चय सूची

सामायिकपाठादि सग्रह की पाठसूची

संशोधन-पत्र

दृष्टिदोष आदि कारणों से कुछ पाठ अशुद्ध छप गये हैं उनका संशोधन इस प्रकार है।—सम्पादक

शुद्धिपत्र का सकेत-पहले पृष्ठ फिर पंक्ति अनन्तर अशुद्धि और फिर शुद्ध पाठ है।

द ५ लिए=लिये। द ८ आगामी=आगमों। ८-२१ आप ही=आसही। ५ १० वयुपासक=वयुपासन। ८ ६ दोव = दीव। ८ ८ परिणिव्वुदाणं = परिणिव्वुदाण। २१ ४ निपद्यो=निसह्या। २२ ८ रिस=रिम। २३ १४ मिनेन्द्र=जिनेन्द्र। २५ ५ पद्म चरिते रविसेण=पद्म चरिते रविषेण। २५ २७ चार्य=चार्या। २७ ५ स्पेद=स्पेद। २८ ८ सिद्धचार्यो=सिद्धाचार्यो। २८ १९ शान्त्यै=शान्त्यै। ३०-१६ कपाप=कषाय। २ १५ स्वम्यभुव =स्वयम्भुव। ३४ ६ द्रुत= द्रुत। ४४ ७ प्रेज=पुञ्ज। ४४ ८ उपाध्या=उपाध्याय। ४५ १८ सोवल=स्निग्ध। ५० ७ विशुद्धचर्य =विशुद्धचर्य। ५० १५ सद्ध्यानी=सद्ध्यानी। ५१ १ चेतना=चेतनाम्। ५१ २ भज इवि सये=भुजे इति लिपेत्। ५१ ६ स्व=स्वे। ५१ ८ गुरवो=गुरवो ५१ १४ इंधनों=इधनों। ५१-१६ पाता=साता। ५२-१४ मम=मम। ५२ १५ समप्राप्ति=समाप्ति। ५२ १६ जगत=तिजगत ५५-१० सत्यथ=सत्पथ। ५६ २ मज्जी=मज्झे। ५७ ६ धिपसे= धिपते। ५७-१६ एदेसिं=जीवा एदेसिं। ५९-१५ मवि=मसि।

६०-५ सम्मुघादे=सम्मुग्घादे। ६४-४ देवमियम्मि=देवसियं। ६६-२० श्रावय=श्रावक। प्रतिलमण=प्रतिक्रमण। ६७ १४ ऽथु=ऽत्थु। ७० २ पडिक्कमामि के आगे छूटा चिन्ह ०। ७२ १८ वच्छ्ल=वच्छुल्ल'। ७४ ६ परिगहिदागमणेणवा=गमणेण वा इत्तरिया अपरिग्गहिदागमणेण वा ७७-२ मिती=मित्ती ८२ २० उसको पडिक्कमामि=उसको (पृष्ठ ७७ में) पडिक्कमामि ८४-७ गम्मण=गमणं, ८६ १६ जिनके=जिसके, ६५ १७ नजि=तजि।

प० मिलापचन्दजी का अभिप्राय

(पृष्ठ १७ पर मुद्रित–मूर्धरुहमुष्टिवासो–आदि पद्यपर)

सामायिक में पद्मासन, उद्भासन, साधारण बैठना इनमें से किसी एक आसन से स्थिर होकर मस्तक के केश हिलते हों तो उन्हें बांध लेवें। बैठ कर सामायिक करता हो तो गोदी में हाथ पर हाथ धर लेवें (यह मुष्टि बंध हुवा।) कपड़ा फैला हुवा हो तो उसे भी बांध कर सकुचित कर लेवें। सामायिक के समय इस प्रकार की कीगई व्यवस्था को 'समय' कहते हैं। जब तक ऐसी व्यवस्था रहेगी तब तक ही सामायिक रहेगा। अर्थात् सामायिक के छूटते साथ उक्त व्यवस्था भी छोड़ दी जावेगी इसे 'यावन्नियम' कहते हैं।

सामायिक पाठादि संग्रह
विधि सहित

मंगल वचनम्

प्रायेण जायते पुंसा वीतरागस्य दर्शनम् ।
तद्-दर्शन-विरक्ताना भनेजन्माऽपि निष्फलम् ॥१॥

—आचार वृत्तौ वसुनन्दि

श्री वीतराग देव का दर्शन मनुष्यों को प्रकृष्ट शुभ कर्म के उदय से प्राप्त होता है। जो वीतराग के दर्शन से विरक्त है—मिथ्या दृष्टि है उनका मानव जन्म पाना भी निष्फल है।

● ● ● ●

बुब्बुद जह पलालहरं माणुस जम्मस्स पाणिय दिवणं ।
जीवा जेहिं ण णाया णाउ ण य रक्खिया जेहिं ॥२॥

—द्वादसी गाथायां ।

फूस की कुटिया जरा-सा हवा का झोका लगा कि नष्ट हुई ऐसी ही हालत मानव देह की समझो, चन्द सांसों का खेल है। सांस आया कि नहीं आया। दुर्लभ नर तन पाकर जिन्होंने जीव के स्वरूप को नहीं पहिचाना और जान लिया तो क्या ? जीवों की रक्षा नहीं करी, मात्र हिंसा के ही उपासक बने रहे ऐसे लोगों ने नर तन को जलांजलि दे डाली समझिये।

● ● ● ●

मानुस भव पायो दियौ जिन धरम न जाना
पाप अनेक उपाइकै गये नरक निदाना ।

—देवा ब्रह्मचारी

❀ श्री परमात्मने वीतरागाय नमः ❀

सामायिक पाठादि संग्रहः

ओं नमः सिद्धेभ्यः

१—निसही पाठः—

[क्रिया—देवालय में प्रवेश करते या पूजा, सामायिक, जिन दर्शन करते समय सर्व प्रथम शुक्ति मुद्रा से तीन बार पढ़ना।]

निसही, निसही, निसही ॥

अर्थ—निसही = हे भगवन ! मैं अपने चित्त से पापों का निषेध करता हूँ।

२—इरियावहीशुद्धि-पाठ.

[क्रिया—शाधोत्सर्ग आसन से और शुक्ति मुद्रा से पढ़ा जावे।]

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए विराहणाए, अणागुत्ते, अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे—पाण-चग्गमणदाए, बीय चंग्गमणदाए, हरिय चकमणदाए, ओस्सा-उत्तिंग-पणग दग मट्टिय—मक्कडयसंतु-संताण-चक-

मणदाए। उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणाऽऽइ वियडि-पइट्ठावणियाए। जे मे जीवा विराहिया—एइंदिया वा बीइंदिया वा तीइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा पेल्लिदा वा संघट्टिदा वा संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा किरिच्छिदा वा लेसिदा वा छिंदिदा वा भिंदिदा वा ठाणादो ठाणं चंकामिदा वा।

३—'तस्स उत्तरगुण' पाठः—

तस्स उत्तरगुणं तस्स पायच्छित्तकरणं तस्स विसोहीकरणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकार पज्जुवासं करेमि ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ॥

अर्थ—हे भन्ते! हे गुरुदेव! मैं (आपकी आज्ञा लेकर) प्रतिक्रमण करू हूँ। ईर्या पथ की देख भाल कर मार्ग में चलने सम्बन्धी विराधना में मैंने जो अनागुप्ति के द्वारा मन वचन कायकी यद्वा तद्वा प्रवृत्ति के द्वारा, अधिक गमन किया हो, लांघ कर चला हो, स्थान पर ही चला हो, इधर उधर भटका हो, प्राणों (दो तीन इन्द्रियों वाले जीवों) पर चक्रमण किया हो, बीज—(उगने की शक्ति वाले बीजों अथवा बीज पड़ी धरती) पर चंक्रमण किया हो, हरिता (दूब आदि वनस्पति) पर चक्रमण किया हो, ओस, उत्तिंग-कीड़ो आदि का बिल, पणग-हरी काई, उदग-पानी मिट्टी और मकड़ी आदि के तने हुए जाले पर चक्रमण किया हो बिना देखे बिना शोधे स्थान पर मलत्याग मूत्रत्याग कफ सिणक (मुख नाक का मल) को त्यागा हो, इस प्रकार

से जो मैंने जीव विराधे हों, चाहे वे एकेन्द्रिय हों, या द्वीन्द्रिय हों या तीन इन्द्रियों वाले हों या चतुरिंद्रिय हों, या पचेंद्रिय हों वे इस प्रकार विराधे कि, चाहे अपने स्थान पर जाते रोके हों या अन्यत्र जाने के लिए प्रेरे हों, या उन्हे परस्पर भिड़ाये हों या एक ठौर ढेर कर दिये हों, या हैरान किये हों, या धूप में तपाये, हों या कष्ट दिया हो, या चिवकाय हों, मसल डाल हों या छेद हों या भेदे हो, या ठौर छुड़ाये हों तो उस दोष का उद्धार गुण हो—दोष मिट कर गुण प्राप्त हो, उसका प्रायश्चित करण हो व्यवहार में निर्दोषपना हो—उसका विशुद्धि करण हो।

इसलिए अरहंत भगवान को नमस्कार पर्युपासक जब तक मैं करता हूं तब तक पाप कर्म वाली और दुश्चरित करने वाली काय को वोसराता हूँ त्यागता हूँ।

इसके बाद—'आगार सूत्र पाठ' (पृष्ठ १० पर से) बोलना।

४—इरियावही आलोचना

[क्रिया—बैठकर शुक्ति मुद्रा से पढ़ा जावे।]

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं।

पुव्वुत्तर पच्छिम-दक्खिण चउदिसाविदिसासु विहरमाणेण जुगंतर दिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा।

जो मे पमाददोसेण डवडवचरियाए वक्खित्त-पराहुत्तेण वा, हत्थ-पादपहारेण वा, पाण भूद-जीवसत्ताण उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अर्थ—हे भते ! हे गुरुदेव ! मैं ईर्यापथिक गमन सम्बन्धी दोषों की आलोचना करना चाहता हू । भव्य जीव को पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण चारों दिशा और विदिशाओं में मार्ग में चलते हुए, जूवे प्रमाण अन्तर से (चार हाथ दूर तक) भूमि पर नजर डाले रहना चाहिये । परन्तु ऐसा न करके जो मैंने प्रमाद दोष के कारण, दण्डव चर्यिया द्वारा तेज चाल से ऊचा मुह किये हुए चलने से अथवा व्याक्षिप्त होकर उलटे मुह चलने से, या हाथ और पांवों के प्रहार से जो प्राण भूत जीव और सत्त्वों का उपघात किया हो, कराया हो करने की सराहा हो तो उसका दुष्कृत मेरे मिथ्या हो ।

अथकृति कर्म पाठ सग्रह

सामायिक स्तव

[क्रिया—कायोत्सर्गासन और शुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त और एक प्रणाम करना फिर शुक्ति मुद्रा से स्थित होना ।

१ नमस्कार-मन्त्र पाठः—

णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण ॥
एसो पचणमोक्कारो सव्व पाव प्पणासणो ।
मंगलाण च सव्वेसिं पढमं होइ मगलं ॥

अर्थ—श्री अरिहन्तो को नमस्कार श्री सिद्धों को नमस्कार श्री आचार्यो को नमस्कार, श्री उपाध्यायों को नमस्कार, और समस्त लोक में—ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक मे तिष्ठते सर्व साधुओं को नमस्कार ।

पाचों परमेष्ठी को किया गया यह पच नमस्कार सारे पापों को विनाशने वाला है, सारे मगलों में—लोक म माने जाते दधि अक्षतादि द्रव्य मगल क्षेत्र मंगल आदि में प्रधान मंगल है।

२ मगलोत्तम शरण दडक पाठ

चत्तारि मगल—अरिहंता मगल, सिद्धा मगल, साहू मंगल केवलि-पएणत्तो धम्मो मंगल।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपएणत्तो धम्मो लोगुत्तमो चत्तारि सरण पवज्जामि अरहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपएणत्तं धम्म सरण पवज्जामि।

अर्थ—ये चार ही मगल हैं—पाप कर्म को गालने वाले और सुख के देने वाले हैं, और नाहीं। १ श्री अरहत मगल २ श्री सिद्ध मगल । ३ श्री साधु मगल और ४ केवलियों का बतलाया धर्म मगल है।

ये चार ही लोकोत्तम हैं—अज्ञान तिमिर के विध्वंसक होने के कारण उत्कृष्ट हैं, और नाहीं। १ श्री अरहत लोकोत्तम २ श्री सिद्ध लोकोत्तम ३ श्री साधु लोकोत्तम और ४ श्री केवलियों का बतलाया धर्म लोकोत्तम।

५ आगार-सूत्र पाठः—

अएणत्थ ऊससिएण वा, णीससिएण वा, उम्मिसिएण वा, णिमिसिएण वा, खासिएण वा, छिंकिएण वा जंभाइएण वा, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं वा, दिट्ठिसंचालेहिं वा, इच्चेवमाइएहिं सव्वेहिं असमाहिपत्तेहिं आयारेहिं अविराहियो होज्ज मे काउस्सग्गो।

अर्थ—उच्छ्वास = सांस लेना, या निश्वास—सांस फैंकना, या उन्मेष—पलकें उघाडना, या निमेष—पलकें मीचना या खांसना या छींकना या जभाई लेना या सूक्ष्म अंगों का संचालन या सूक्ष्म दृष्टि का संचालन तथा इसी प्रकार के दूसरे सभी एकाग्रता के बाधक आगारों को छोड़कर मेरा कायोत्सर्ग अविराधित—पूर्ण होवे।

६ क्रिया और जाप देना

आगार सूत्र पढ कर फिर तीन आवर्त एक प्रणाम करके एक ढोक भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना फिर जिनमुद्रा और उद्गासन (कायोत्सर्गासन) से २७ उच्छ्वास में णमोकार मंत्र को ६ बार गुनना-(जाप देना)

क्रिया-खडे होकर शुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़ कर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके स्तव को पढना।

७ चउवीसत्थव [स्तव, चतुर्विंशतिस्तव] पाठः—

थोस्सामिऽहं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णर-पवरे लोय महिए विहुय रय-मले महापण्णे १
लोयस्सुज्जोययरे धम्मतित्थकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तइस्सं चउवीसं चेव केवलिणो २
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ३
सुविहिं च पुप्फदंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि ४
कुंथुं च जिण-वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदे अरिट्ठणेमिं पासं तह वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभित्थुया विहुय रयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय-वंदिय महिया एए लोगुत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहिय पयासंता ।
सायर इव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

इति चतुर्विंशतिस्तव (थव) पाठः ॥

क्रिया—स्तव पढने के अनन्तर खड़े २ शुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक प्रणाम और एक शिरोनति देना ।

१-जो 'जिनवर' हैं = सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणठाणे पर्यन्त के 'जिन' संज्ञा वालों में श्रेष्ठ हैं। जो 'तीर्थंकर' और 'केवली' हैं। 'अनन्त जिन' हैं अर्थात् अनन्त-संसार के विजेता तथा अनन्त-मिथ्यात्व कर्म के विजेता हैं। 'नरप्रवर' हैं = मनुष्यों में सबसे उत्तम हैं। 'लोकमहित हैं' = विश्वपूजित हैं। 'विधूत रजोमल' हैं = रज (दोनों आवरण कर्म) और मल (मोह और अन्तराय कर्म) को नष्ट कर चुके हैं। 'महाप्राज्ञ' हैं= लोकोत्तर केवलज्ञान विद्या के धारक हैं, मैं उनकी स्तुति करूंगा।

२-जो 'लोकोद्योतकर' हैं,=भाव लोक को प्रकाशने वाले हैं, जो धर्मतीर्थ के कर्ता हैं, 'जिन' हैं—राग द्वेष विजयी हैं, 'वंद्य' हैं=पूजने उपासना करने योग्य हैं, 'अरिहंत' हैं, ऐसे श्री चौबीस केवलियों का कीर्तन करूंगा।

३-मैं १ श्री ऋषभनाथ को २ अजित को ३ सम्भव को ४ अभिनन्दन को ५ सुमति को ६ पद्मप्रभ• को ७ सुपार्श्वनाथ को और ८ चन्द्रप्रभ जिनको वन्दता हूं।

४-मैं ६ सुविधिदेव या पुष्पदन्त को १० ११ १२ शीतल श्रेयोनाथ वासुपूज्य को और १३ विमल को १४ अनन्तजिन को १५ धर्म को और १६ शान्ति जिनेन्द्र को वंदता हूँ।

५-१७ कुंथु जिनवरेन्द्र को १८ अरनाथ को १६ मल्लि को २० सुव्रत (मुनिसुव्रत) को २१ नमिदेव को २२ अरिष्टनेमि को २३ पार्श्व को तथा २४ वर्द्धमान को वंदता हूं।

६-इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो विधूत रजोमल हैं, जरा मरण दोनों से सर्वथा रहित हैं, ऐसे ये चौबीसों जिनवर मुझ पर प्रसन्न हों=उनके स्मरण से और चिंतन से मेरे कुशल परिणाम हों और प्रशस्ताध्यवसाय हों।

७-जो इन्द्रादि देवों से और मनुष्यों से कीर्तित वन्दित और महित हुए हैं=स्तुति नमस्क्रिया और पूजा को प्राप्त हुए हैं, जो लोकोत्तम हैं, सिद्ध हैं,=निरंजन निर्विकार हैं, ऐसे ये चौबीसों जिन मुझे आरोग्य=सिद्धत्व अर्थात् आत्मशान्ति को, ज्ञान=भवभ्रमण नाशक बुद्धि को, समाधि=आत्म रूप में निष्ठा तथा बोधि=रत्नत्रय को प्रदान करें।

८-जो चांद से अधिक निर्मल हैं, सूरज की अपेक्षा अधिक प्रकाश करने वाले हैं, सागर जैसे गम्भीर हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मुझे सिद्धि प्रदान करें-उनके आलम्बन से मुझे सिद्धि प्राप्त हो।

विशेष—यदि केवल सामायिक ही करना हो तो पर्यंकासन और शुक्तिमुद्रा धार कर ये सामायिक गाथाएं पढ़ें और अर्थ चिंतन करें। गृहस्थ के निराकार सामायिक असंभव है तो प्रतिज्ञा में 'साकार और यावन्नियम' रूप हो सामायिक करे फिर स्वाध्याय आदि शुभोपयोग प्रारंभ करें।

सामायिक गाथा (मूलाचार से उद्धृत)

सव्व दुक्ख-पहीणाणं सिद्धाणं अरहदो णमो।
सद्दहे जिणपण्णत्तं पच्चक्खामि य पावयं १
णमोऽत्थु धुद-पावाणं सिद्धाण च महेसिणं।
संथरं पडिवज्जामि जहा केवलि-देसियं २
जं किंचि मे दुच्चरियं सव्वं तिविहेण वोस्सरे।
सामाइयं च तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं ३
बज्झऽब्भतरमुवहिं सरीराइं च भोयणं।
मणेण वचिकायेण सव्वं तिविहेण वोस्सरे ४

सव्व पाणारंभ पच्चक्खामि य अलीयवयणं च ।
सव्वमदत्तादाणं मेहुणय परिग्गहं चेव ५
सम्म मे सव्वभूदेसु वेर मज्झ ण केणइ ।
आसाओ वोस्सरित्ता ण समाहिं पडिवज्जए ६
खामेमि सव्वजीवेऽह सव्वे जीवा खमतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेर मज्झ ण केणइ ७
रायबधं पदोसं च हरिस दीणभावय ।
उस्सुगत्तं भय सोग रदिमरदिं च वोस्सरे ८
ममत्ति परिवज्जेमि णिम्ममत्ति उवट्ठिदो ।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइ वोस्सरे ९
आदा हु मज्झ णाणे आदा मे दसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे सवरे जोए १०
एगो य मरए जीवो एगो य उववज्जइ ।
एगस्स जाइ मरणं एगो सिज्झइ णीरओ ११
एगो मे सासदो आदा णाणदसणलक्खणो ।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा १२
सजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्खपरपरा ।
तम्हा सजोगसंबंध सव्व तिविहेण वोस्सरे १३
जीवियमरणे लाहालाहे सजोगविप्पओगे य ।
बंधुऽरि सुह-दुक्खादिसु समदा सामाइय णाम १४ इति

१—जो सांसारिक सारे दुखों से रहित हो चुके हैं, उन श्री सिद्धों को और अरहंतों को प्रणाम करके, मैं जिनेन्द्र के वचनों का श्रद्धान करता हूँ और पापों को त्यागता हूँ।

२—जो पापों को नष्ट कर चुके हैं, उन सिद्धों और महर्षियों को मेरा नमस्कार हो। तथा मैं जैसा केवलज्ञानी महात्माओं ने बतलाया है, वैसा रत्नत्रय रूप सांथरे को स्वीकारता हूँ—अपनाता हू।

३-जो कुछ भी मेरी अशुभ-प्रवृत्तियां हैं, उन सभी को मैं त्रिविध भाव से—मन, वचन और काय से त्यागता हूँ तथा विकल्प भावरहित मन वचन काय सम्बन्धी सर्व सामायिक को करता हू।

४-मैं बाहिरी और भीतरी सब उपधियों (परिग्रहों) को त्यागता हूँ, और शरीर को—तन से ममता भाव को तथा सब आहारों को मन से वचन से काय से और कृत से कारित से अनुमोदना से वोसराता हूँ।

५—सारे जीवघात के आरम्भ को, असत्य भाषण को, सब चोरी को, मैथुन और परिग्रह को त्यागता हूँ।

६—मेरे सारे प्राणियों में समताभाव है, किसी के साथ वैर भाव नहीं है। मैं सारी आशा-तृष्णा को त्याग करके आत्म स्वरूप का ध्यानरूप समाधि को अपनाता हू।

७—सारे जीवों को मैं क्षमा करता हू, सारे जीव मुझ अपराधी को क्षमा करे। सारे प्राणियों में मेरे मित्रभाव है किसी के साथ वैर नहीं है।

८—मैं इष्ट के राग बंध को अनिष्ट में द्वेष को, हर्ष को दीनता को और उत्सुकता को भय और शोक को रति और अरति को वोसराता हूँ।

६—मैं निर्मम-भाव—अनाशक्ति को प्राप्त होकर ममता को त्यागता हूं। मेरे केवल आत्मा ही—शुद्धात्मा ही आलंबन (आधार) है, अवशेष सबको त्यागता हूं।

१०—ज्ञान में, दर्शन में और चारित्र में, प्रत्याख्यान में, संवर में तथा योग में—समाधि में मेरे आत्मा ही एक मात्र आधार है।

११—यह जीव एकला ही मरता है, एकला ही उपजता है, एकले के ही जन्म और मरण होते हैं एकला ही नीरज (कर्म रहित) होकर सीमता है—सिद्ध पद को जाता है।

१२—मेरा ज्ञान और दर्शन लक्षण वाला एक आत्मा ही शाश्वत है—सदा काल रहने वाला है। आत्मा के सिवाय शेष सारे बाहिरी भाव—पर पदार्थ संयोगलक्षण है अतएव नाशवान है।

१३—इस जीवने संयोग मूलक—दुःख परम्परा को पाया है—पर पदार्थों में ममता करने से अनादिकाल से अब तक चारों गतियों में नानाविध कष्ट उठाये हैं। इसलिए सारे संयोग जनित सम्बन्धों को त्रिविध—मन वच तन से त्यागता हूँ।

१४—जीवन और मरण में, लाभ और हानि में, संयोग और वियोग में बन्धु और वैरी में, सुख और दुःख आदि में समता भाव का नाम सामायिक है।

सामायिक के पाठों में एक घड़ी वंदना पाठ में और प्रतिक्रमण पाठ में एक एक घड़ी छहों आवश्यक पालने में दो घड़ी-(पौण घंटा लगभग) लगता है।

(पृष्ठ ६ से १६ तक का अंश क्रम भंग हो जाने से दुबारा छपाया गया है इसलिए आगे का पृष्ठ १७ का अंश अब व्यर्थ हो गया है।)

[जी]विदमरणे लाहालाहे संजोग विप्पओगे य।
[ब]धुऽरि-सुहदुक्खादिसु समदा सामाइय णाम १४

इति आचारशास्त्रोक्ता सामायिकार्थप्रतिपादनपरा गाथाः।

[अ]र्थ—१४—जीवन और मरणमें लाभ और हानिमें संयोग [औ]र वियोगमें बन्धु और वैरीमें सुख और दुःख आदिमें [स]मता भावका नाम सामायिक है।

इति सामायिक गाथा

सामायिकमें 'यावन्नियम' का खुलासा:—

मूर्धरुहमुष्टिवासो बन्ध पर्यङ्कबन्धन चापि।
स्थानमुपवेशन वा समय जानन्ति समयज्ञा ॥

रत्नकरण्ड पद्य ६८ वाँ

[अर्थ] —भाव यह है कि सामायिक लेते समय मस्तकके केशोंको, [मु]ट्ठीको, कपड़ेके गांठको, दृढ आसन (पैरोंका) को, खड़े आसनको [कि]सी स्थान विशेषपर बैठकको, इनमसे किसी एक को बांधकर [कि] जबतक इस बंधको बांधे हुए हूं तबतक मेरे सामायिक है' [ऐ]सी गृहस्थको प्रतिज्ञा करना उचित है। ऐसा समय संबंधी नियम [जा]नना।

[नो]ट-आज कल घड़ी यंत्र की सहायता से भी समयका नियम लिया जा सकता है।

६ सामायिक दोष-प्रतिक्रमण-पाठः—

(पारने का पाठ)

क्रिया—पर्यंकासन शुक्तिमुद्रासे पाठ पढ़ना ।

पडिक्कमामि भंते । सामाइयवदे, मणदुप्पणिधाणेण वा, वयणदुप्पणिधाणे वा, कायदुप्पणिधाणेण वा, अणादरेण वा, सदि-अणुवट्ठावणेण वा, जो मए अइचारो मणसा वचसा कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड़ ।

क्रिया—इसके बाद णमोकार मंत्रका २७ उच्छ्वास से ९ बार जापदेना

इति सामायिकं नाम प्रथम आवश्यक कर्म ॥१॥

अर्थ-हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैं आपकी आज्ञा लेकर पडिकमणा करता हूँ। सामायिक के व्रत में जो मन को दुष्ट चिंतन में लगाया होवे, वचन को दुष्ट भाषण में लगाया होवे, काय को दुष्ट क्रिया में लगाया होवे, नियम पालन में अनादर किया होवे या स्मृति को ठीक नहीं राखी होय, इन कारणों से जो मैंने अतिचार = दोष मन से वचन से काय से किया होवे या कराया होवे या करते को भला माना होवे उसका मेरे 'मिच्छा दुक्कड' होय = श्री भगवत के प्रसाद से पाप मिथ्या होवे ।

इस प्रकार सामायिक नामा प्रथम आवश्यक कर्म समाप्त हुआ ॥१॥

स्तव पाठ।

१ 'निसही—निसही—निसही' ऐसे ३ बार पढ़ना।

२ फिर सामायिक पाठ में से चौथे 'सामायिक ग्रहण प्रतिज्ञा पाठ' को (पृष्ठ ६ पर मुद्रित) पढ़कर णमोकारमन्त्र का ६ बार (२७ उच्छ्वास से) ध्यान करना।

३ फिर कायोत्सर्गासन और शुद्धि मुद्रासे सामायिकपाठ के अंतर्गत ७ वें चउवीस-थव पाठ (पृष्ठ १० पर मुद्रित) को पढ़ना।

नोट —सुविधा हो तो समंतभद्र सूरि रचित स्वयम्भूस्तोत्र को सुस्वर स्वर से पढ़ना।

इति स्तवनामा द्वितीयं आवश्यकं कर्म ॥२॥

—— x ——

वन्दना पाठः—

देव वन्दन-चैत्यवन्दन प्रयोगानुपूर्वी।

१ देवालय पर पहुँचकर शुद्धजल से हाथ पांव धोना।

२ 'ओं नमः सिद्धेभ्यः। ओं जय जय जय नंद वर्धस्व।' ये वाक्य सुस्वर स्वर से पढ़ना।

३ 'निसही' इस पद को मंदिरजी के प्रवेश द्वार पर १, फिर मध्य भाग में पहुँचकर २, फिर प्रतिमाजीके सन्मुख पहुँचकर ३, इस तरह तीन जगह पर कहना।

४ फिर दर्शनपाठ को पढ़ते हुए तीन प्रदक्षिणा देना। (कुछ दर्शन पाठ आगे दिये गये हैं, ये या दूसरे पाठ भी इच्छानुसार पढ़े जा सकते हैं)।

५ प्रदक्षिणा में चारों दिशाओंमें ३-३ आवर्त और १ १ प्रणाम करना।

६ फिर जिन प्रतिमाके सामने इरियावही शुद्धिपाठको आलोचना पाठ सहित (पृ० ३ से ६ तक देखो) पढ़ना।

७ फिर बैठकर देववंदना विज्ञापना करना और बैठे बैठे ही —

८ फिर चैत्यभक्तिका कृत्यविज्ञापना पाठ (पृष्ठ २५ पर) पढ़कर पहली कृत्यविज्ञापना करना।

६ फिर खड़े होकर भूमिस्पर्शनात्मक प्रणाम करना।

१० फिर सामायिक पाठके अन्तर्गत १ से ७ पाठों को क्रिया—विधि सहित पढ़ना। ये पाठ चतुर्विंशतिस्तवपर्यंत हैं (पृ० ६ से १३ तक देखो)।

(यह चैत्यभक्ति का कृतिकर्म हुआ।)

११ फिर खड़े २ चैत्यभक्तिसंग्रह के छह पाठ पढ़ना और बैठकर चैत्यभक्ति का आलोचना पाठ पढ़ना।

१२ फिर बैठे बैठे पंचगुरुभक्ति का कृत्यविज्ञापना पाठ पढ़कर कृत्यविज्ञापना करना।

१३ फिर खड़े होकर आनुपूर्वी १० वीं के अनुसार १ से ७ पाठों को पढ़ना।

(यह पचगुरुभक्ति का कृतिकर्म हुआ)

१४ फिर खड़े ही पंचगुरुभक्ति पाठ और बैठकर उसी भक्तिका आलोचनापाठ पढ़ना।

१५ फिर बैठे ही समाधिभक्ति का कृत्यविज्ञापन करके केवल णमोकार मन्त्रका ६ बार जाप देना और समाधिभक्तिपाठ आलोचना पाठ सहित पढ़ना।

१६ देवालय से *निकलते समय* 'आसही आसही आसही' ऐसे यह पद तीन बार बोलना।

इस प्रकार देववंदनाप्रयोगानुपूर्वी जानना ॥

दर्शन पाठ–संग्रह

१ बृहद्—दर्शनस्तोत्रम्—

निःसंगोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवन्द्यं
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् १

श्रीमत्पवित्रमकलङ्कमनन्तकल्पं
स्वायम्भुवं सकलमङ्गलमादितीर्थम्।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां
त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये २

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ३

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत्।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः ४

अद्याऽभवत्सफलता नयनद्वयस्य
देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ५

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ६

नमो नम सत्त्वहितङ्कराय वीराय भव्याम्बुजभास्कराय ।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ७

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ८

देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग
सर्वज्ञ तीर्थकर सिद्ध महानुभाव ।
त्रैलोक्यनाथ जिनपुङ्गव वर्द्धमान
स्वामिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ६

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा जितकषाया. ।
जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः १०

जयतु जिनवर्द्धमानस्त्रिभुवन-हित धर्म-चक्रनीरजबन्धुः ।
त्रिदशपति मुकुट-भासुर-चूडामणि-रश्मि रञ्जिताऽरुण चरण.११

जय जय जय त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे
नुद नुद नुद स्वान्त-ध्वान्तं जगत्कमलार्क नः ।
नय नय नय स्वामिन् शान्ति नितान्तमनन्तिमा
नहि नहि नहि त्राता लोकैकमित्र भवत्परः १२

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे
भक्तिं स्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव ।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति
यश्चर्करीति तव देव स एव धन्य. १३

मम आज आतम भयौ पावन, आज विघ्न विनाशियौ।
संसार सागर-नीर निवर्यौ, अखिल तत्त्व प्रकाशियौ॥
अब भई कमला किंकरी, मम उभय भव निर्मल भये।
दुख जरयौ, दुर्गति वास निवर्यौ, आज नव मंगल भये॥२॥
मन हरण मूरति हेरि प्रभु की कौन उपमा लाइये।
मम सकल तन के रोम हुलसे हर्ष ओर न पाइये॥
कल्याणकाल प्रत्यक्ष प्रभुकौं लखै जे सुरनर घने।
तिह समय की आनन्द महिमा कहत क्यों मुखसौं बने॥३॥
भर-नयन निरखे नाथ तुमकौं अवर वांछा ना रही।
मन के मनोरथ भये पूरण रंक मानो निधि लही॥
अब होहु भवभव भक्ति तुम्हरी कृपा ऐसी कीजिये।
कर जोडि "भूधरदास" विनवै यही वर मोहि दीजिये॥४॥

इति कवि-भूधर कृत भाषा दर्शनस्तोत्रम् ॥२॥

विशेष—भोजदेव भूपाल कृत जिनचतुर्विंशतिका संस्कृत और पं॰ दौलतरामकृत 'सकलज्ञेयज्ञायक'—आदि भाषादर्शन स्तोत्र भी भावपूर्ण है—आदि आदि ॥

इस प्रकार दर्शनस्तोत्र पढकर प्रदक्षिणा देना उसके पश्चात् देववंदना विज्ञापना पढना।

देववन्दना विज्ञापना

'नमोऽस्तु भगवन् ! देववन्दनां करिष्यामि !'

अर्थात्—हे भगवन् आपको ... मैं वन्दना करूंगा।

यह वाक्य बोलकर पंचांग ... के समक्ष आसन से बैठकर य अग्र

सिद्धं सम्पूर्णमन्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् १
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमङ्गलम् २

(—पद्मचरिते रविषेण सूरि)

अर्थ—जो सिद्ध कृतकृत्य हैं, सारे मंगलरूप प्रयोजनोंकी सिद्धिके उत्तम कारण हैं, रत्नत्रयधर्म के प्रतिपादक हैं, जिनके चरणकमलों में इन्द्र आदि देवगण नतमस्तक हुए हैं और जो त्रिभुवनमें मंगलरूप हैं उन श्री महावीर प्रभु को मैं नमन करता हूँ।

क्रिया—इसके अनन्तर सामायिक स्वीकार करनेनिमित्त इस प्रकार पढ़ना—

नमोऽस्तु भगवन् ! प्रसीदतु प्रभुपादाः । वंदिष्येऽहं सर्व-सावद्ययोगाद् विरतोऽस्मि ।

—अर्थात् हे भगवन् ! आपको नमस्कार हो, श्रीप्रभुजी प्रसन्न होवें। (आपकी भक्ति से मेरे प्रशस्त परिणाम) होवें। मैं वंदना करने वाला हूँ, अतएव सारे सावद्य योगों से विरत हुआ हूँ।

क्रिया—इसके अनन्तर चैत्यभक्ति का कृत्य विज्ञापना पाठ बैठ कर पढ़ना।

चैत्यभक्ति कृत्य विज्ञापना —

अथ पौर्वाह्णिक-माध्याह्निक आपराह्णिक) देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदना स्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं कुर्वे ।

(पूर्वाह्न सम्बन्धी मध्याह्न सम्बन्धी अपराह्न संबंधी) देववन्दना में।

अब पूर्वाचार्यों के क्रमानुसार सकलकर्मों के क्षय निमित्त मैं भावपूजा वंदना और स्तव समेत चैत्यभक्ति कायोत्सर्ग करता हूँ।

क्रिया—फिर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठों को पढ़ना फिर आगे के चैत्यभक्ति के छह पाठ पढ़ना।

चैत्य-भक्ति-संग्रह.

१ 'जयतु भगवान्'-स्तोत्र

[देव धर्म वचन ज्ञान स्तुति]

क्रिया—वन्दनामुद्रा और कायोत्सर्ग आसन से पढ़ना।

जयतु भगवान् हेमाऽम्भोज-प्रचारविजृम्भिता—
वमर मुकुट-च्छायोद्गीर्ण-प्रभा परिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्पर वैरिणो
विगत कलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।
तदनु जयतु श्रेयान् धर्मः प्रवृद्ध महोदयः
कुगति विपथ क्लेशाद् योऽसौ विपाशयति

विशेष—इस संग्रह में श्वेताम्बरों में कुछ और ... और पाठ बोले व पढ़े जाते हैं। दि० बोले जाते हैं।

परिणत-नयस्यां-ऽङ्गीभाराद् विविक्त विकल्पित
भवतु भरतम् भ्रात् त्रेधा जिनेंद्र-वचोऽमृतम् ।२।
तदनु जयतात् जैनी वित्तिः प्रभङ्ग तरङ्गिणी
प्रभव विगम ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव विभाविनी ।
निरुपम-सुखस्येद द्वार विघट्य निरर्गल
विगत-रजस मोक्ष देयान् निरत्यय मव्ययम् ॥३ ॥इति॥

१—जयतु भगवान स्तोत्र का अर्थ

१—जिन्होंने सुवर्णमयी कमलों के मध्य में गमन करके शोभा पाई है और भक्तिसे नत मस्तक हुए देवगणके मुकुटोंके शिखरों पर लगी मणियोंकी चमक से दीप्ति बढ़ाई है, ऐसे जिनके चरणयुगलको शरण रूप प्राप्त होकर पापी से पापी, मान कषाय से उद्धत और परस्पर बैरी भी=साप नेवला आदि प्राणी अपनी कलुषता त्यागकर विश्वास को प्राप्त हुए=परमशांत बने, वह अहिंसा का प्रतिष्ठान-परम अहिंसक जिनन्द्रदेव सर्वोत्कृष्ट बादर आज भी विश्व के हृदय में विराजो ।

२-तदनन्तर जो कल्याण रूप है, जो 'प्रबुद्ध महोदय' है=पूर्वकाल में स्वर्गादि के और नरलोकके उत्तमोत्तम पदों पर अपने प्रभाव से प्राणी को चढ़ा चुका है, तथा आज भी, जो प्राणियों को नरक निगोद आदि कुगतियों के निमित्तभूत मिथ्यामार्ग के कलशों से छुटकारा दिलाता है ऐसा जिनेन्द्र का वह रत्नत्रय धर्म जयवत हो जो द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा 'अनादि निधन' है तो भी पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा 'गणधर के रचे हुए कहे जाते हैं वे अंगपूर्व और प्रकीर्णक रूप तीन प्रकार के जिन वचनामृत विश्व की संसार बन्धन से रक्षा करने वाले होंवें ।

३—जो सप्त भंगों और अनन्त भंगों रूप तरंगों वाली है द्रव्य का उत्पत्ति स्थिति और संहार रूप त्रिविध स्वभाव दर्शाने वाली है ऐसी जिनेन्द्रकी विति = ज्ञान, केवलज्ञान निरुपम सुख के द्वार रूप मोह कर्म को हटा कर निर्मल = विमकर्म रहित और विगतरज = ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म रहित अविनाशी और निर्दोष मोक्ष को प्रदान करे।

२—दश-पद-स्तोत्रम्

अर्हत्सिद्धाऽऽचार्योपाध्यायेभ्यस् तथा च साधुभ्यः।
सब-जगद्-वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः १
मोहादि-सर्व दोषाऽरि घातकेभ्यः सदाहत-रजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजाऽर्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः २
क्षान्त्याऽऽर्जवाऽऽदि गुणगण सुसाधन सकललोकहितहेतुम्
×सुख धामनि धातार वंदे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ३
मिथ्याज्ञानतमो वृत लोकैक-ज्योतिरमित-गमयोगि।
साङ्गोपाङ्गमजेयं जैन वचनं सदा वन्दे ४
भवनविमानज्योति-र्व्यन्तर-नरलोक-विश्व चैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दिताना वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम् ५
भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाऽधिपाऽभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाऽग्नि शान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः ६

× शुभ धामनि' प्रतियों का पाठ है।

इति पञ्च महापुरुषा प्रणुता जिन-धर्म-वचन-चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमला दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम् ७

अर्थ १—समस्त जगत् के वंदनीय और सर्वत्र तीनों लोकों में विराजमान सारे अरहतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं को नमस्कार हो।

२—जो मोह आदि समस्त दोष रूपी शत्रुओं के घातक हैं, 'सदाहत रज' हैं=ज्ञानावरण दर्शनावरण रूप रजको नष्टकर चुके हैं, अन्तराय कर्म रहित है अर्थात् घातिकर्म रहित हैं, और त्रिलोकी के पूजायोग्य है, उन अरहतों को नमस्कार हो।

३—जो क्षमा, आर्जव आदि गुणों का साधन है, लोकोपकारक है सुरधाम=मोक्ष में पहुँचाने वाला है, ऐसे जिनेन्द्र-कथित धर्म को मैं वन्दता हूँ।

४—जो मिथ्यात्व और अज्ञान रूपी तिमिर रोग से दुःखी लोकों को अपूर्व ज्योति रूप है, तथा अपरिमित ज्ञान का दाता है, 'अजेय' है=प्रमाण नय से सकल दृष्टियों से वस्तु स्वरूप को बतलाने वाला होने से एकान्तवादों के अबाध्य है, ऐसे अंग-उपांग समेत जिनवचन को मैं वंदता हूँ।

५—त्रिलोकी पूजित श्री जिनेन्द्र की उन समस्त प्रतिमाओं को—जो भवनलोक, विमानलोक, ज्योतिर्लोक और व्यंतरलोक इन चार देवलोकों के आवासों में और नरलोक में वर्तती हैं, मैं मन, वचन, काय को शुद्ध करके वंदता हूँ।

६—जो त्रिभुवन के अधिपतियों—इन्द्र असुरेन्द्र और राजेन्द्रों से वंद्य संसार सागर से पार पहुँचे हैं ऐसे श्री तीर्थङ्करों

के त्रिलोकवर्ती चैत्यालयों को मैं संसार ताप की शांति के लिये वंदना हूँ।

७—इस प्रकार स्तुति किये गये श्री पंच परमेष्ठी, जिनेन्द्र तथा जिनेन्द्र सम्बन्धी धर्म, वचन, प्रतिमाएँ और भवन मुझे ज्ञानी जनों के इष्ट निर्मल बोधि=रत्नत्रय को प्रदान करें।

३—जिन-प्रतिमा-स्तवनम्

अकृतानि कृतानि चा-ऽप्रमेय—
द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजाऽमर-पूजितानि वन्दे
प्रतिबिम्बानि जगत् त्रये जिनानाम् १

द्युति-मण्डल-भासुरा-ऽङ्ग-यष्टीः
भुवनेषु-त्रिषु भूतये प्रवृत्ताः
वपुषा-ऽप्रतिमा जिनोत्तमानां
प्रतिमाः प्राञ्जलि रस्मि वन्दमानः २

विगताऽऽयुध विक्रिया विभूषा
प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनोत्तमानाम्।
प्रतिमाः प्रतिमा-गृहेषु कान्त्या—
ऽप्रतिमाः कल्मष शान्तयेऽभिवन्दे ३

कथयन्ति कषाय मुक्ति-लक्ष्मीं
परया शान्त-तया भवा-न्तकानाम्।

प्रणमाम्यमिरूप-मूर्तिमन्ति
प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ४
यदिद मम सिद्ध-भक्ति-नीत
सुकृत दुष्कृत वर्त्म रोधि, तेन—
पटुना जिन-धर्म एव भक्तिर्
भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ५

अर्थ १—जो देदीप्यमान मदिरों में विराजमान हैं, महाकान्ति को धारती हैं, मनुष्यों और देवों से पूजित हैं ऐसी तीन लोक सम्बन्धी समस्त अकृत = शाश्वत और कृत = धातु पाषाण आदि निर्मित जिन प्रतिमाओं को मैं वदता हूँ।

२—जो प्रभा मण्डल से दीप्तिमान हैं, दिखने में अनुपम, आकृति वाली हैं ऐसी तीनों लोकों में वर्तती जिनेन्द्र की प्रतिमाओं को मुक्ति और अभ्युदय के निमित्त मैं अजलि जोड़कर वदता हूँ।

३—जो आयुधों और कटाक्षादि अंगविकारों तथा विविध वेषभूषा से सर्वथा रहित हैं दिखने में 'प्रकृतिरम्य' = परम शांत हैं चमक में अनुपम हैं ऐसी चैत्यालयों में विराजमान जिनेश्वरों की प्रतिमाओं को मैं पापों की शांति के लिये वदता हूँ।

४—जो अपनी परम शान्त मुद्रा से कषायों के अभाव रूप लक्ष्मी को = आत्मा की शुद्ध अवस्था को प्रकट करती हैं ऐसी ससार के नाशक जिनेश्वरों की प्रतिमाओं को मैं विशुद्धि के लिए वदता हूँ।

४—इस प्रकार सिद्धभक्ति=चैत्यभक्ति के करने के द्वारा जो मुझे पाप पंथ का रोकने वाला यह प्रशस्त पुण्य प्राप्त हुआ है उसके प्रभाव से मुझे भवभव में जैनधर्म में ही दृढभक्ति मिलती रहे, यही मेरी अभिलाषा है।

४—विश्व चैत्य चैत्यालय कीर्तनम्

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम्
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये १
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये २
श्रीमद् भावन-वासस्थाः स्वय भासुर-मूर्तयः
वंन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमा परमां गतिम् ३
ये व्यन्तर-विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहा ।
ते च सङ्ख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे ४
ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुत सम्पद ।
गृहा स्वम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ५
वन्दे सुर-तिरीटाऽग्रमणि-च्छाया-ऽभिषेचनम्।
याः क्रमैरेव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धि लब्धये ६
इति स्तुतिपथा ऽतीत श्रीभृतामर्हतां मम ।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव निरोधिनी ७

१—जो सर्वभाव हैं=परिपूर्णचारित्र के धारी हैं, क्षायिक दर्शन और केवलज्ञान सम्पदा से युक्त हैं, ऐसे श्री अरहंतों के चैत्यों को मैं अपने भावों मे विशुद्धि के निमित्त बुद्धि के अनुसार स्तवूंगा—अर्थात् जिन बिम्बों की स्तुति करूंगा।

२—लोक में जितने भी अकृत और कृत चैत्य हैं उन सबको मैं विभूति के निमित्त वन्दता हूँ।

३—जो भवनवासी देवों के देदीप्यमान आवासों मे स्थित हैं, अनादि सिद्ध और चमकवाली है ऐसी जिनप्रतिमाएँ वंदना की गईं हमें परम गति को प्रदान करें।

४—व्यन्तर देवों के विमानों में जो शाश्वत और गणना तीत चैत्यालय हैं, वे हमारे दोषों के नाश का कारण बनें।

५—ज्योतिर्लोक के विमानों में जो अकृत्रिम और अद्भुत सम्पदा वाले चैत्यालय हैं उनको मैं नमता हूँ।

६—विमानवासी देवों के मुकुटों के शिखरों पर जड़े हुए रत्नों की प्रभा रूपी जलधारा के अभिषेक को जो अपने चरणों के द्वारा प्राप्त करती हैं अर्थात् जिन्हें स्वर्ग के देव सदा पूजते हैं ऐसी स्वर्गों की अकृत्रिम प्रतिमाओं को मैं सिद्धि की प्राप्ति के लिये वंदता हूँ।

७—वचनों से अवर्णनीय कांति के धारक श्री अरहंतों के चैत्यों की इस प्रकार की गई स्तुति मेरे समस्त आस्रवों को रोकने वाली हो—स्तुति के प्रभाव से नवीन कर्मों का आगमन रुके।

५—'अर्हन्-महानद'—स्तव:

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवन-भव्य-जन तीर्थ यात्रिक-दुरित-प्रक्षालनैक-कारणमतिलौकिक-कुहक-तीर्थमुत्तमतीर्थम् १

लोका-ऽलोक-सुतत्त्व-प्रत्यवबोधन-समर्थ दिव्य-ज्ञान-
प्रत्यह-वहत्-प्रवाहं, व्रत-शीलाऽमल विशाल-कूल द्वितयम् २
शुक्लध्यान स्तिमित स्थित राजद् राजहंस राजित मसकृद्
स्वाध्याय मन्द्र घोष नानागुण समिति गुप्ति सिकता सुभगम् ३
क्षान्त्यावर्त सहस्रं सर्वदया विकच कुसुम विलसल्लतिकम् ।
दुस्सह परीषहाख्य द्रुत-तर रङ्गत्तरङ्ग भङ्गुर निकरम् ४
व्यपगत कषाय फेनं राग द्वेषाऽऽदि दोष शैवल रहितम् ।
अत्यस्त मोह कर्दम मतिदूर निरस्त मरण मकर प्रकरम् ५
ऋषि वृषभ-स्तुति मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष विविध विहग-ध्वानम्
विविध-तपो-निधिपुलिनं सास्रव-संवरण-निर्जरा निस्रवणम्
गणधर-चक्रधरेन्द्र-प्रभृति-महाभव्य पुण्डरीकैः पुरुषैः
बहुभिः स्नात भक्त्या कलिकलुष-मलाऽपकर्षणार्थममेयम्
अवतीर्णवतः स्नातुं ममा-ऽपि दुस्तर-समस्त-दुरित दूरम्
व्यपहरतु परम पावन मनन्य जय्यस्वभाव भाव गंभीरम् ८

१—श्री अरहत परमेष्ठी रूप महानदका परम उत्तम तीर्थ है, वह सदाकाल तीन लोकवर्ती भव्य जीव रूपी तीर्थ यात्रियों का पाप पखालने में प्रधान कारण है, तथा लौकिक मिथ्या तीर्थों से बढा चढा है।

२—उस तीर्थमें लोक और अलोक तथा जीवादि ... ज्ञाननेमें समर्थ दिव्यज्ञानका प्रवाह सदाकाल बहता रहता और उस तीर्थके व्रत और शील रूपी दोनोंबाजू दो किनारे बने हैं।

३—वह तीर्थ शुक्लध्यानमें दृढ़ आरूढ़ हुए ऋषियों रूप राजहंसों से सेवित है, निरंतर पढ़े जाते उत्तमोत्तम सिद्धान्त ग्रंथोंके स्वाध्यायरूप गंभीर ध्वनि को लिये हुए है तथा नाना प्रकारकेगुण, समिति और गुप्ति रूपी बालुकासे परमरमणीय है।

४—उस तीर्थमें परम क्षमाके सहस्रों आवर्त-भौंर हैं, तथा विश्व भूत दया रूपी लता लहलहारही है, दुःसह परीषह सम कायक्लेश तप रूपी वेगवान् तरंगकी सलवटें पड़ रहीहैं।

५—उस तीर्थमेंसे कषाय रूपी फेन मिट चुका है, राग-द्वेष आदि दोष रूपी सेवाल हट चुका है, मोहरूपी कीचड़ सूख चुकाहै, और पुनर्जन्मका कारण मरणरूप मगर दूर किया जा चुका है।

६—उस तीर्थ पर ऋषि-महर्षियों द्वारा कीजाती स्तुति गंभीर घोष रूपी अनेक पक्षियोंकी चहचहाट है, नाना प्रकार के तपस्वी रूपी पुल हैं संवर निर्जरा रूप झरने झर रहे हैं।

७—गणधर, चक्रवर्ती और इन्द्र आदि महाभव्योत्तम अनेक पुरुष अपने अशान्ति तथा पाप मलको धोनेके निमित्त उस तीर्थ में स्नान कर चुके हैं। इस तरह वह 'अर्हन्महानद तीर्थ अमेय'=महान् है।

८—अबाधित स्वभाव वाले जीवादि पदार्थों से गंभीर रूप वह परमपावन 'अर्हन्महानद तीर्थ' नहाने के लिये उतरे हुए —अर्हत्स्वरूप चिंतन में तल्लीन हुए मुझ भव्यके भी समस्त महा पाप-दूर कर देवें।

६—जिनरूप-स्तवनम् ।

अताम्र-नयनोत्पलं सकल कोप वह्नेर्जयात्
कटाक्ष शर- मोक्षहीन मविकारितोद्रेकतः ।
विषाद-मद हानितः प्रहसितायमान सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् १

निराभरण-भासुर विगत रागवेगोदयान्
निरम्बर-मनोहरं प्रकृतिरूप-निर्दोषतः ।
निरायुध सुनिर्भय विगत-हिंस्य-हिंसा-क्रमान्
निरामिष सुतृप्तिमद् विविधवेदनानां क्षयात् २

मित-स्थित-नखाङ्गजं गत-रजो मल-स्पर्शनं
नवाऽम्बुरुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्धोदयम् ।
रवीन्द्र कुलिशाऽऽदि दिव्य-बहु-लक्षणाऽलङ्कृत
दिवाकर-सहस्र-भासुरमपीक्षणानां प्रियम् ३

हितार्थ-परिपन्थिभि प्रबल राग मोहादिभि
कलङ्कितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते ।
सदाऽभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वत
शरद्-विमल-चन्द्र-मण्डलमिवोत्थित दृश्यते ४

तदेतदमरेश्वर-प्रचल-मौलि-माला मणि–
स्फुरत्किरण-चुम्बनीय-चरणा ऽरविन्दद्वयम् ।

पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूपमन्धीकृत
जगत् सकलमन्यतीर्थ गुरुरूप-दोषोदयैः ५

१—हे जिनेन्द्र देव ! आपने समस्त क्रोध रूप अग्नि ज्वाला को शान्त कर दिया इसलिये आपके नेत्रों में लाली नाम मात्र भी नहीं पाई जाती आपने काम वासना को विघटित करके बहुत बड़े बड़े निर्विकार भावों को पा लिया, इसलिये आपकी दृष्टि सरल, स्वाभाविक, अथच कटाक्षपात से रहित नासिकाग्रपर बिल्कुल स्थिर हो रही है। आपने विषाद (रज) और अहंकार को नसादिया, इसलिये मुस्कराता हुआ सा यह मुख आपके हृदय की परम विशुद्धि को मानो बतला रहा है।

२—हे प्रभो ! आपका परमौदारिक शरीर आभूषणों के बिना ही दिप रहा है, इसलिये कि उसके द्वारा राग का अस्तित्व मिटाया जा चुका है। वस्त्रों के बिना ही मनोहर लगता है, इस लिये कि उसके प्रकृति गत रूप में कोई दोष नहीं है। आयुधों के बिना ही निर्भय बना हुवा है, इसलिये कि उसमें हिंस्य (मारने योग्य) और हिंसाका क्रम नष्ट हो चुका है, और आहार के बिना ही परम तृप्त प्रतीत होता है, इसलिये कि उसमें नाना प्रकार की वेदनाएं (तज्जनित दु खानुभव) नाश होचुकी हैं।

३—आपका रूप नखकेशोंकी वृद्धिसे विवर्जित है, रज (धूल) और मलके स्पर्शसे रहित है, ताजा कमल और चन्दनकी सी मनमोहक गंध को लिये हुए है, सूरज चक्र आदि अनेक शुभ लक्षणों से भूषित है, तथा हजार सूरज जैसी चमक होते हुए भी नयनाभिराम है।

४—यह प्राणी आत्माके हितरूप प्रयोजन में बाधक बने हुए प्रबल राग मोह आदि विभावोंके निमित्तसे मलिन चित्त बना हुवा है। सो आपके रूप को (एकबार भी भावपूर्वक) देखले तो शुद्ध हृदय हो जाता है तथा लोक में जो योगीजन सदाकाल अपने सन्मुख ही आपके रूपको देखा करते हैं मानों उन्हें तो यह उगते हुए शरद की पूनम के चाद-सरीखा दिखता है।

५—हे भगवज्जिनेन्द्र ! भक्ति से नतमस्तक हुए इन्द्रोंके मुकुटों में लगे हुए रत्नों की प्रभा से आपके दोनों चरण चूँबने योग्य बने हुए हैं ऐसा वही यह आपका रूप सारे विश्व को पवित्र करे, कि जो अन्य (एकान्त मिथ्या) तीर्थों के गुरु रूप (मिथ्यात्व रूप) दोषोदयसं (दोषों के उदय से, अथवा दोषा=रात्रिके बढ जाने से) अँधा किया जा चुका है जिस विश्व की समस्त प्रजा को मिथ्या मतो के कारण बुद्धि होते हुए भी सत्यार्थ मुक्ति का मार्ग नहीं सूझरहा है॥

जिनरूप स्तवन का हिन्दी रूपान्तर

छन्द ३१ मात्रिक

लोचन लाली रहित शान्त बतलाते, जीता तूने रोष,
दृष्टि कटाक्ष-हीन कहती, नहीं तुझमें काम विकृतिका दोष।
मद विषादको दई जलांजलि, यों यह हंसती सी अभिराम,
सौम्य मुखाकृति तथा बताती, शुद्ध हृदय तू आतमराम॥१॥
[illegible]वका नाश किया, यों पास न तेरे भूषण सार,
सहज सुन्दर तन, यों नहीं वस्त्रों का शृंगार।

द्वेष छोड़ि तू बना अकिंचन निर्भय, यों न पास हथियार
विविध यंत्रनाओं के वशसे सदा नूत तू बिन आहार ॥२॥
मल मूत्रादिक रान अशुचियत, मोहें परिमित नख श्रक केश,
भीनी-चन्दन चमकसी-परिमल महंकत सारे देह प्रदेश ।
रवि-शशि-वज्र-यथाऽऽदि सुहाते सहस अठोत्तर चिह्न अशेष,
सूर्य सहस्र समान कांतिमय तदपि नयन-प्रिय तेरा भेष ॥३॥
राग मोह मिथ्यात्व महारिपु हित का भान न होनेदेत,
इनके वश जगवासी भूले मोह-नींद में पड़े अचेत ।
निरखें पलक खोल जो तुमको होते क्षणमें शुद्ध सचेत,
योगिजनों के मनवसती छवि तेरी किधौं उदित शशि श्वेत ।४।
बीता काल अनन्त जगतमें भ्रमते मिला न सुखका लेश,
जिनवर ! तू सच्चा सुख पाया यों तेरे पद नमत सुरेश ।
मिथ्यामति पाखंडि तिमिरसे अन्ध बने जो पाते क्लेश,
वे निजरूप ज्योति मनमें धर मेटो अपन सारे क्लेश ॥५॥

—अनुवादक—दीपचन्द पांड्या

चैत्यभक्ति-आलोचना दंडक पाठ ।

क्रिया—बैठे आसन वंदना मुद्रा से पढ़ना ।

इच्छामि भंते ! चेइय-भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमा-ऽकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोयेसु, भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिया त्ति चउ-व्विहा देवा सपरिवारा, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण,

शयपने आलिंगित = विभूषित हैं, वे श्रीसाधु हमें मोक्ष पथ को सुझाने वाले हों।

६—जो इस स्तोत्रके द्वारा पचगुरुओंको वदता है, वह भव्यजीवन गुरु अनन्त ससारकी घनी बेडी = बधनको या वेल्लि = लता को अर्थात मिथ्यात्व को छेदता है और अनेक सिद्धियों के सुखोंको तथा उत्तम पुरुषों से सम्मानको प्राप्त करके कर्मरूपी इधन के प्रेज को भस्म करदेता है।

७—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्या और साधु ये पचपरमेष्ठी, और इन पाँचों के नमस्कार मुझे भवभव में सुख देवें।

२—नमस्कार निर्वचन

राय दोस कमाए य इदियाणि य पच य।
उवसग्गे परिसहे णामयतो णमो ऽरिहा १
अरिहंति णमोक्कार अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए।
रजहता अरिहति य अरहता तेण उच्चदे २
अरहत-णमोक्कार भावेण य जो करेदि पयदमदी।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ३
दीहकाल अय जतू उसिदो अट्ठकम्महि।
सिदे धत्ते णिधत्ते य सिद्धत्तं उवगच्छइ ४
आवेसणी सरीरे इंदियमडो मणो व आगरिओ।
धमिदव्व जीवलोहे बावीसपरिसह-ऽग्गीहिं ५

सिद्धाण णमोक्कार भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ६
सदा आयार विद्दण्हू सदा आयरियं चरे ।
आयारमायारयन्तो आयरिओ तेण उच्चदे ७
जम्हा पंचविहाचारं आचरन्तो पभासदि ।
आयरियाणि देसन्तो आयरिओ तेण उच्चदे ८
आयरियणमोक्कार भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्ख पावदि अचिरेण कालेण ९
बारसंगं जिणक्खादं सज्झाओ कहिओ बुधे ।
उवदेसइ सज्झाय तेणुवज्झाउ उच्चदे १०
उवज्झाय-णमोक्कार भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्ख पावदि अचिरेण कालेण ११
णिव्वाण साधए जोगे सदा जुजंति साधवो ।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो १२
साहूण णमोक्कार भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्ख पावदि अचिरेण कालेण १३
एव गुणजुत्ताण पच गुरूणं विसुद्धकरणेहिं
जो कुणदि णमोक्कार सो पावदि णिव्वुदिं सोक्ख १४
एसो पच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मगलेसु य सव्वेसु पढम हवइ मगलं १५

३—'वे हैं परम उपास्य'—मङ्गलगीत

यह गीत सारग भैरवी भासो आदि विविध रागों में बोला जा सकता है।

वे हैं परम उपास्य मोह जिन जीतलिया।
हम हैं उनके दास मोह जिन जीतलिया।ध्रुवक। (टेर)

काम, क्रोध, मद, लोभ पछाडे सुभट महा बलवान।
माया कुटिल नीति-नागिन हनि किया आत्म सत्राण १
ज्ञान ज्योति से मिथ्या-तमका जिनके हुआ विलोप।
रागद्वेष का मिटा उपद्रव रहा न भय और शोक २
इन्द्रिय विषय-लालसा जिनकी रही न कुछ अवशेष।
तृष्णा—नदी सुखादी सारो धरि श्रमण-व्रत वेष ३
दुख उद्विग्न करें नहीं जिनको सुख न लुभावें चित्त।
आत्म-रूप-सतुष्ट गिनें सम निर्धन और सवित्त ४
निन्दा स्तुति सम लखें बने जो निष्प्रमाद निष्पाप।
साम्य-भाव रस-आस्वादन से मिटा हृदय सन्ताप ५
अहंकार-ममकार-चक्र से निकले जो धरि धीर।
निर्विकार निर्वैर हुए पी विश्व प्रेम का नीर ६
साध आत्म-हित जिन वीरों ने किया विश्व कल्याण।
"युग मुमुक्षु" उनको नित ध्यावें छोडि सकल अभिमान७

—'युगवीर'

इति पचगुरुभक्तिसंग्रहः।

पंचगुरु-भक्तिआलोचना दंडकपाठ

क्रिया—बैठे आसन से शुक्ति मुद्रा से पढ़ा जावे।

इच्छामि भंते ! पंच-महागुरु-भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा लोचेउं । अट्ठ महा पाडिहेर संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठ-गुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोय मत्थयम्मि पइट्ठियाण, सिद्धाण, अट्ठ-पवयण माउ-संजुत्ताणं आयरियाण, आयारा-ऽऽदि सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण पालण-रयाणं सव्वसाहूण, णिच्चकालं अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्म-क्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण, सम्म, समाहिमरण, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

इति देव वन्दनाया द्वितीय कृतिकर्म ॥२॥

हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैंने पंचमहागुरुभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। आठ महा प्रातिहार्य रूप विभूति से भूषित अरहंतों का, आठ गुणों को प्राप्त तथा ऊर्ध्वलोकके शिखर पर प्रतिष्ठित सिद्धों का, अष्ट प्रवचनमातृका से संयुक्त आचार्यों का, आचारांग आदि द्वादशांग रूप श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायों का और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रयके पालने में तत्पर सर्वसाधुओं का मैं अर्चन पूजन, वंदन और नमस्कार करता हूँ।

भाव से की गई पंचमहागुरुभक्ति के द्वारा उपार्जित सुकृत के प्रसादसे मेरे दु:खोंका क्षय होवे, कर्मों का क्षय

५—जो भव्य मोह राग और द्वेष से अपने को रहित करके—स्वयं अमोही अरागी और अद्वेषी बनकर शुद्धस्वरूप में अपने शुद्ध उपयोग को लीन करता है वह सिद्धि को पाता है।

६—रत्नत्रय की प्राप्ति, आत्मध्यानकी विशुद्धिका लाभ, तथा आत्म साक्षात्कार की उपलब्धि से अतीव आनन्दयुक्त होते हुए जो परमब्रह्मको जानते अनुभव करते हैं वे सद्गुरु मुझपर प्रसन्न होवें।

अथेष्ट प्रार्थना:—

प्रथम करण चरण द्रव्य नमः।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेते ऽपवर्गः १

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद-द्वये
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद् यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च ज मए भ
त खमउ णाणदेवय मज्झ वि दुक्ख क्खयं
दुक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च
... जगतबंधव ! तव जिणवर ...

प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानु योग रूप श्रुतज्ञानको नमस्कार हो।

१—जब तक मुझे अपवर्ग की प्राप्ति होना शेष है तब तक जिनागम शास्त्रों का अभ्यास हो, जिनेन्द्र की स्तुति-वन्दना मिले, सदा श्रेष्ठ सदाचारी पुरुषोंकी सगति मिले। मैं सदाचारी जनों के गुणोंकी कथा करूँ, किसीके दोष बोलनेमें मौनप्रवृत्ति होऊँ, सबके प्रति प्रिय और हितकर वचन बोलूँ, और आत्म तत्त्व में भावना होवे-मुझे भव भव में यह समागम मिले।

२—हे जिनदेव! आपके चरणयुगल मेरे चित्तमें और मेरा चित्त आपके चरणयुगलमें लीन रहे अहर्निश ध्यानयुक्त होकर लगा रहे।

३—मैंने जो अक्षर पद अर्थ और मात्रा से हीन कहा हो उसे हे ज्ञानदेव! क्षमा करो और मुझ दुःखक्षय देवो।

४—दुःखों का क्षय, कर्मो का क्षय, रत्नत्रयका लाभ, सुगति में गमन, सम्यग्दर्शन, समाधिमरण, जिनेन्द्रके गुणों की सम्प्राप्ति मुझे होवे।

सग्रह गाथा (आचार शास्त्रात्)

जा गदी अरहताण णिट्ठिदट्ठाण जा गदी।
जा गदी वीदमोहाण सा मे भवदु सस्सदा १
सव्वमियं उवदेस जिणदिट्ठ सद्दहामि तिविहेण।
तस-थावर खेमकर सार णिव्वाण मग्गस्स २

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूद ।
जर-मरण वाहिहरण खयकरण सव्वदुक्खाणं ३
णाण सरणं मे दसण च सरणं च चरिय सरण च ।
तवसंजमं च सरणं भयवं सरणं महावीरो ४
ज अल्लीणा जीवा तरंति संसारसायरं घोर
त भुवनजणहिदकरं णादउ जिणसासण सुइरं ५

१—जो गति अरहतो की है जो गति कृतकृत्यपुरुषों—सिद्धों की है जो गति वीतरागमुनियों की है वह ही शाश्वती गति मेरी होवे ।

२—यह सारा जिनेन्द्र कथित उपदेश त्रस स्थावर प्राणि मात्रका कल्याण कारी है निर्वाणमार्ग का सारभूत है इसे मैं मन वचन कायसे श्रद्धानकरता हूँ ।

३—यह जिनवाणी जरामरण रूप व्याधि को हरने वाली, सब दु खोंको क्षयकरने वाली, और विषयसुखों की चाह को मिटानेवाली अमृत रूप औषध है ।

४—मेरे सम्यग्ज्ञान शरण भूत है सम्यग्दर्शन शरण है। सम्यग्चारित्र शरण है सम्यग्तप और जीवदयारूप सेयम शरण है भगवान् महावीर प्रभु शरण है ।

५—जिसका आश्रय करके ये जीव घोर दु खप्रद ससार सागर को पारकरते हैं वह विश्वकी जनता का हितकारक जिनेन्द्रका शासन अहिंसा धर्म चिरकाल तक फलो फूलो बढता रहे ॥

॥ इति ॥

गीत—

राग—जौनपुरी

दयामय ! ऐसी मति होजाय ।
त्रिभुवनकी कल्याणकामना दिन दिन बढ़ती जाय ।टेर।
औरोंके सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय
अपने दुख सब सहूँ किन्तु पर दुख नहीं देखा जाय १
अधम-अज्ञ अस्पृश्य-अधर्मी दुखी और असहाय—
सबके अवगाहन हित मम उर सुर-सरि-सम बनजाय २
भूला भटका उलटीमतिका जो है जन समुदाय
उसे सुझावें सच्चा सत्पथ निज सर्वस्व लगाय ३
सत्य धर्म हो सत्य कर्म हो सत्य ध्येय बनजाय
सत्यान्वेषणमें ही "प्रेमी" जीवन यह लगजाय ४

—पं० नाथूराम प्रेमी

मेरी भावना

इस प्रसिद्ध रचना का पाठ भी किया जा सकता है—

इति समाधिभक्ति पाठ संग्रहः

समाधिभक्ति आलोचना दण्डक पाठ

इच्छामि भंते समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ
तस्सालोचेउं रयणत्तय-सरूव-परमप्प-ज्झाणलक्खणं समाहिं
भत्तीए णिच्चकाल अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झ ॥

हे भंते हे गुरुदेव मैंने समाधिभक्ति संबधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। मैं समाधिकी जो निश्चय रत्नत्रय स्वरूप परमात्म तत्त्व का ध्यान लक्षण वाला है सदाकाल अर्चता, पूजता, वंदता और नमता हूँ।

भावसे की गई समाधिभक्ति केद्वारा उपार्जित सुकृतके प्रसाद से मेरे दुःखोंका क्षयहोवे, कर्मों का क्षय होवे, रत्नत्रय का लाभ होवे, सुगति में गमन होवे, सम्यग्दर्शन होवे, समाधि मरण होवे, और जिनेन्द्रके गुणों की संप्राप्ति होवे ॥

क्रिया—देवालय से निकलते समय प्रभुजीको नमस्कार करके ९ जापदेकर ये शब्द पढना।

आसही ! आसही !! आसही !!!

अर्थ—हे भगवन ! यह देव वन्दना मैंने सब सांसरिक आशाओं को त्यागकर की है।

इति वन्दना नाम तृतीय आवश्यक कर्म—

अथ श्रावक-प्रतिक्रमणपाठसंग्रह.

प्रतिक्रमण पीठिका

क्रिया—शुक्तिमुद्रा से बेठकर पढ़ना

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्त्तिपुः सत्पथे ॥१॥

खम्मामि सव्वजीवेऽहं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि ॥२॥

रागबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्त भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥३॥

हा दुट्ठ कयं हा दुट्ठ चिंतियं भासियं च हा दुट्ठ ।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ॥४॥

एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पचेंदिया-पुढ-विकाइया-आउकाइया-तेउकाइया वाउकाइया-वणप्फदिका-इया तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उव-घादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

नारह वदेसु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अरहंतसिद्धआइरियउवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समाराहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु।

इति प्रतिक्रमण पीठिका

१—हे तीनों लोकोंके नाथ! जिनेन्द्रदेव! मैं पापी हूं, मैं दुरात्मा हूँ, मैं जडमति हू, मैं मायावी तथा लोभी हूँ। मैंने राग द्वेषसे मलिन मन होकर जो भी दुष्टचिन्तन, दुष्टसभाषण और दुष्ट व्यापार रूप दुष्कर्म किये हैं उनको आपके श्रीपादमूलमें अपनी निंदा करता हुवा त्यागता हूँ और निरन्तर सन्मार्गमें वरतना चाहता हूँ।

२—मैं सारे जीवों को क्षमा करता हूँ। सारे जीव मुझ अपराधी को क्षमा करें। सारे प्राणियों में मेरे मित्रभाव है किसी के साथ वैर नहीं है।

३—मैं इष्ट में रागभावको, अनिष्टमें द्वेषको, हर्षको, दीनता को और उत्सुकता को भय और शोक को, रति और अरति को वोसराता हूँ-त्यागता हूँ।

४—हे भगवन्! हाय! मैंने शरीरसे दुष्ठु (बुरा) किया है हाय! मनसे दुष्ठु विचारा है हाय! वाणीसे दुष्ठु भाषण किया है। सो मैं अब पश्चाताप के द्वारा वेदना करता हुवा (वेपतों वेवमान-कांपता हुवा) सतहीमन जल रहा हूँ।

एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा पृथ्वीकायिक जलकायिक तेजकायिक वायुकायिक वनस्पति कायिक और त्रसकायिक ये जीवराशि हैं।

इन जीवों का उत्तापन (हैरान करना) परितापन (धूप में तपाना) विराधन = प्राणपीड़न और उपघात किया हो या कराया हो या करते को भला माना हो तो उसका मेरे मिच्छा दुक्कड़ होवे-पाप मिथ्या होवे।

बारह व्रतों में प्रमाद आदि के निमित्त से किये गये अतिचार दोषों की शुद्धि के निमित्त मेरे छेदोपस्थापना होवे। अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु इन पांचों परमेष्ठियोंकी साक्षीपूर्वक सम्यग्दर्शन पूर्वक मेरे सुव्रत और दृढव्रत भले प्रकार आराधित होवे ॥३॥

अथ कृत्यविज्ञापना

अथ देवसियपडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्त पुव्वायरियकमेण आलोयणसिद्धभत्ति—काउस्सग्गं करेमि।

क्रिया—भूमि स्पर्शात्मक नमस्कार करे।

तदनन्तर शुक्तिमुद्रा से खड़े होकर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठों को (पृ० ६ से १३ तक) पढ़ना

अथ सिद्धभक्तिपाठ

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठम-पुढवि णिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्च १

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयास णिव्वुदे सिद्धे ।
अंतयडेदरसिद्धे उक्कस्स जहण्ण मज्झिमोगाहे २
उड्ढमहतिरियलोए छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे ।
उवसग्गि णिरुवसग्गे दीवोदहि णिव्वुदे य वंदामि ३
पच्छायडे य सिद्धे दुग-तिग चदु-णाणपंच-चदुर-जमे ।
पडिवडिदा-ऽपरिवडिदे सजमसम्मत्तणाणमादीहिं ४
साहरणा-ऽसाहरणे सम्मुघादेदरे य णिव्वादे ।
ठिदपलियंकणिसण्णे विगयमले परमणाणगे वंदे ५
पुवेद वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ६
पत्तेय सयंबुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा ।
पत्तेयं पत्तेयं समये समयं च पणिवदामि सदा ७
पणणवदु-अट्ठवीसा-चउतेणवदी य दोण्णि पचेव ।
बावण्ण-हीण-वियसय-पयडि-विणासेण होंति ते सिद्धा ८
अइसयमव्वाबाहं सोक्खमणंत अणोवमं परमं ।
इंदियविसयातीदं अप्पत्थं अच्चुअं च ते पत्ता ९
लोयग्ग-मत्थयत्था चरमसरीरेण ते दु किंचूणा ।
गयसित्थ-मूसगब्भे जारिसु आयारु तारिसायारा १०
जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्ति-जुत्तस्स ।
दिंतु वरणाणलाहं बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ११

१—जो अष्ट प्रकारके कर्मोंसे रहित हैं, अष्ट गुणों से युक्त हैं, अनुपम हैं, अष्टमी पृथ्वी पर विराजते हैं, कृतकृत्य हैं, उन सिद्धोंको हम नित्य वन्दते हैं।

२—जो तीर्थंकर पदको पाकर या विना तीर्थंकर हुए, सिद्ध हुए, जल से, स्थलसे या आकाश से सिद्ध हुए, अंतकृत केवली होकर या अतकृत हुए विना सिद्ध हुए-उत्कृष्टजघन्य या मध्यम शरीरकी अवगाहना पाकर उससे सिद्ध हुए।

३—ऊर्ध्व लोकसे अधोलोकसे या तिर्यग्लोकसे सिद्ध हुए सुषमसुषमा से लेकर दुष्षमदुष्षमा तक छह प्रकार के काल में किसी समय सिद्ध हुए, उपसर्गों को सहन करके या विना सहे सिद्ध हुए या द्वीपसे सागरमे सिद्ध हुए उनको मैं नमता हूँ।

४—जो एक केवलज्ञानसे तथा पूर्व अवस्था में कितने ही दो ज्ञानों को तीन ज्ञानोंको और चार ज्ञानोंको पाकर सिद्ध हुए या पांचों सयमोंको या चारों सयमोंको पाकर सिद्ध हुए कितने ही सयम से, सम्यक्त्वसे, ज्ञान, ध्यान आदि से परिपतित (स्थानभ्रष्ट) होकर या नहीं होकर सिद्ध हुए।

५—कितने ही वैरी आदि के द्वारा संहरण से या असंहरण से, समुद्घात अथवा विना समुद्घात किये, कितने ही कायोत्सर्गासन से या पल्यंकासनसे बैठे हुए विगतमल-सिद्ध हुए उन परमक्षायर पुरुषों को मैं वन्दता हूँ।

६—जो कितने ही भावों में पु वेद के उदय को अनुभवते हुए क्षपक श्रेणि पर चढ़कर ध्यानस्थ होकर तथा कितने ही भावों में उसीतरह स्त्रीवेदके और नपुसकवेद के उदय को भी अनुभवते हुए सिद्ध हुए।

७—जो किसी एक कारण को पाकर वैराग्य लिया वे प्रत्येकबुद्ध, जो बिना कारण के विराग हुए वे स्वयंबुद्ध और जो उपदेश पाकर विराग हुए वे बोधितबुद्ध कहलाते हैं सो वे होकर सिद्धपद को प्राप्तहुए, उन प्रत्येक को पृथक २ समय में और एक साथ सदा प्रणामकरता हूँ।

८—पाच, नौ, दो, अठावीस, चार, तिराणवे, दो और पाच इसप्रकार बावनकम दो सौ (१४८) कर्म प्रकृतियों के विनाश से ये पूर्वोक्त सभी सिद्ध हुए हैं।

९—वे सर्वातिशायि, अबाध, अनन्त, अनुपम, उत्कृष्ट, इंद्रियोंके अगोचर, आत्मोत्थ (आत्मीय) और अच्युत (अविनाशी) सौख्यको प्राप्तहुए है।

१०—वे सिद्ध लोकाग्रके मस्तकपर स्थित हैं अंतिममानव देह से कुछ कम प्रदेश वाले हैं मैणरहित मूसाके गर्भ में जैसा आकार होता है वैसे नराकार वाले हैं।

११—जरा, मरण और ज मरहित वे सिद्ध परमेष्ठी मुझ परसभक्तिसयुक्त को ज्ञानीजनोके (परम इष्टहोने से) प्रार्थनीय परमशुद्ध ऐसे उत्तमज्ञानलाभको प्रदानकरें।

लघु सिद्ध भक्ति पाठ

तव सिद्धे णय सिद्धे सजमसिद्धे चरित्त सिद्धे य।
णाणम्मि दसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमसामि ॥१॥

अर्थात तप, नय, सयम, चारित्र और ज्ञान दर्शन आदि के द्वारा जो सिद्ध हुए उन परमात्मा को मैं शिर से नमस्कार करता हूँ।

सिद्धभक्ति–आलोचना दण्डक पाठ

क्रिया—पर्य का सनस बैठकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से पढ़ना।

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तसिद्धाणं अतीदाणागदवट्टमाण का-लत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं सम्म समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

हे भंते! हे गुरुदेव! मैंने सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त हैं, अष्टविधकर्मों से मुक्त हैं, अष्टगुण संपन्न हैं उर्ध्वलोक के शिखरपर प्रतिष्ठित हैं, तपसिद्ध नयसिद्ध संयम सिद्ध हैं, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यकचारित्रसे सिद्ध हैं, और भूत भविष्यत् वर्तमान रूप तीन कालों से सिद्ध हैं, ऐसे सर्व सिद्धों को मैं अर्चना पूजता वंदता और नमता हूँ

भावपूर्वक की गई सिद्धभक्ति के प्रसाद से मेरे दुःखोंका क्षय होवे, कर्मोंका क्षय होवे, रत्नत्रयका लाभ होवे, सुगति में गमन होवे, सम्यग्दर्शन होवे, समाधिपूर्वक मरण होवे, और जिनेंद्र के गुणों की संप्राप्ति होवे॥

॥ इति ॥

आलोचना

आलोचना गाथा सूत्राणि (आचारशास्त्रात्)

क्रिया—बैठकर शुक्ति मुद्रा से पढना—

इच्छामि भंते ! देवसियम्मि (राइयम्मि) आलोचेउं—
इह-परलोय-ऽत्ताणं-अगुत्ति मरणं च वेयणा-ऽऽकम्हि-भया
णिग्गणिस्सरिया-ऽण्णा-कुल-बल-तव-रूव-जाइ मया १
पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच
पवयणमाउ-पयत्था तेत्तीस-ऽच्चासणा भणिया २
सत्त भये अट्ठमए सण्णा चत्तारि गारवे तिण्णि
तेत्तीस-ऽच्चासणाओ राग दोस च गरहामि ३
असजम अण्णाणं मिच्छत्तं सव्वमेव य ममत्तिं
जीवेसु अजीवेसु य तं णिंदे तं च गरहामि ४
मूलगुणे उत्तरगुणे जो मे णाराहिओ पमादेण
समह सव्वं णिंदे पडिक्कमे आगमिस्साण ५
णिंदामि णिंदणिज्जं गरहामि य जं च मे गरहणिज्जं ।
आलोचेमि य सव्वं सब्भंतरबाहिरं उवहिं ६
एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो, तस्स भंते
पडिक्कमामि मए पडिक्कंत तस्स मे सम्मत्तमरणं पंडिय मरणं
वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-
गमणं सम्म समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

बारहवदेसु पमादाइ कयाऽइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झ।

अरहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-सव्वसाहु सक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समाराहियं मे हवदु मे हवदु मे हवदु।

इति श्रावक प्रतिक्रमणे प्रथम कृतिकर्म १

१—भय सात हैं जैसे-ऐहलौकिकभय, पारलौकिकभय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिक भय। तथा विज्ञान, ऐश्वर्य, आज्ञा, कुल, बल, तप, रूप और जाति इन आठका मद करना सो आठ मद हैं।

२—अत्यासना का अर्थ जिनेन्द्रकी आज्ञाका श्रद्धान और पालन नहीं किया जाना है सो अत्यासना तेतीस हैं। पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमातृका, और नौ पदार्थ इन तेतीस का यथासमय पालन और श्रद्धान नहीं करने रूप कही गई हैं।

३—मैं सात भय, आठ मद, चार संज्ञाएं, तीन गारव, तेतीस अत्यासना, तथा राग और द्वेष को गरहता हूँ।

४—जीव और अजीव विषयक सारे असंयम को, अज्ञान को, मिथ्यात्व को और मम व परिणामों को मैं निंदता हू मैं गरहता हूँ।

५—मुनिधर्म और श्रावकधर्म सम्बन्धी मूलगुणों तथा उत्तरगुणों में से जो कोई मैंने प्रमाद के वश होकर नहीं आराधन किया है, उन सबको मैं निंदता हू और आगामीकाल में तद्विषयक विराधना को मैं निंदता पडिकमाता हूं।

६—जो मेरा निंदनीय कृत्य है उसको निंदता हूँ तथा जो गर्हणीय कृत्य है उसको गरहता हूँ तथा अभ्यतर और बाह्य सब (चौबीस) परिग्रहों की मैं आलोचना करता हूँ।

इन सब में जो कोई मेरे दिन सम्बन्धी (रात्रि सम्बन्धी) अतिचार अनाचार हुए हों तो उसको हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैं पडिकमाता हूँ कि सोधता हूँ।

भावपूर्वक प्रतिक्रमण की है उसके प्रसाद से मेरे दु खक्षय कर्मक्षय रत्नत्रय लाभ सुगति में गमन सम्यग्दर्शन समाधिपूर्वक मरण, सम्यक्त्वपूर्वक मरण, पंडितमरण, वीर्यमरण और जिनेन्द्र के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

बारह व्रतोंमें प्रमाद आदि से किये गये अतिचार (दोष) को सोधने निमित्त मेरे छेदोपस्थापन होवे।

अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्व साधु इन ५ परमेष्ठियों की साक्षी से मेरे सम्यग्दर्शन पूर्वक उत्तमव्रत दृढ व्रत भलेप्रकार आराधित होवे ॥३॥

इस प्रकार श्रावक प्रतिक्रमण में प्रथम कृतिकर्म हुआ ॥१॥

प्रतिक्रमण निषद्याभक्ति नाम द्वितीय कृतिकर्म

क्रिया—बैठकर कृत्य विज्ञापना पाठ पढ़ना

कृत्य विज्ञापना पाठ

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण पडिक्कमणणिसिहीभत्ति-काउस्सग्गं करेमि

अब मैं दिवससंबंधी प्रतिक्रमण में सारे दोषोंकी विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के अनुक्रमसे प्रतिक्रमणनिषद्याभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ।

क्रिया—भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना। फिर खड़े होकर सामायिक पाठके अंतर्गत १ से ७ पाठोंको (पृष्ठ ६ से १२ पर देखो) विधि सहित पढ़ना।

लघु 'णमो णिसिहीए' दंडक पाठ—

+णमो जिणाणं–३, णमो णिसिहीए–३, णमोऽत्थु दे–३, × अरहंते सिद्धे बुद्धे [-आरए धीरए] णीरए णिम्मले

णमो णिसिहीए—पाठ की विशेष सूचना

+ इस चिन्ह वाला पाठ बृहत्पाठ में नहीं है।

[ ] ऐसे कस चिन्ह का मध्यवर्ती पाठ प्रचलित प्रतियों में नहीं मिलता। (आगे देखिये)

[-णिप्पके] ०णिम्मने णिक्कम्मे णीराये णिद्दोसे णिम्मोहे ०सुमणसे ०सुममणे ०सुमंतमणे समजोगे समभावे णिस्संगे णिस्सल्ले ०मणमूरणे तवप्पभावणे गुणरयणे सीलसायरे अणतजिणे अप्पमेये महड्ढि महावीर वड्ढमाण बुद्धि रिसिणो [-केवलणाणिणो] चेदि णमोऽत्थु दे—३ ॥

मम मंगल अरिहता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो य, [-आभिणिबोहियणाणी य, सुदणाणी य] ओहिणाणी य, मणपज्जयणाणी य, [-जे के वि जीवलोए] चउदस पुव्वंगविदू, सुदसमिदिसमिद्धा य, खंतिखवगाय, खीण मोहा य, तवो य, वारसविहो तवस्सी य, गुणा य गुण महता य महारिसी, तित्थ च तित्थकरा य सव्वे, पवयणं पवयणी य, णाण णाणी य, दसण दसणी य (*१) संजमो संजदा य (*२) विणओ विणीदा य (*३) बंभचेरवासो बभचारी य खंतीओ चेव खतिमता य

०णिम्मय ०णिम्मम ०सममण ०सुममण ०सुसमत्थ ०माणमाया मोस मूरण । ऊपर वाले पर्ण क स्थान पर क्रमश ये पद प्रचलित प्रतियो में पाये जाते हैं तथा 'अरहत' आदि द्वितीयाबहुवचनान्तपदों के स्थानपर 'अरहत ! जैसा सबोधन एकवचनान्त पाठ पाया जाता है ।

(*१) ऐसे चिन्ह का मध्यवर्ती पाठ बृहत्पाठ में हैं जो इस पाठ में नहीं लिया गया है और परिशिष्ट म अङ्क देकर दिया गया है ।

गुत्तीओ चेव गुत्तिमता य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमता य, समिदीओ चेव समिदिमता य, ससमय-परसमयविदू बोहि-पयुद्धा य बुद्धिमंता य, चेदियरुक्खा य चेदियाणि। (*४) सिद्धायदणाणि उड्ढ-अह-तिरियलोए (*५)+सम-साणि×सिद्धिणिसिहियाओ अट्ठावदपव्वदे (*६) सम्मेदे उज्जयंते (*७) चपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियाए सहाए पञ्चमाए (*८) जाओ अण्णाओ काओ वि णिसिहियाओ अत्थि जीवलोयम्मि ईसप्पब्भारगयाण सिद्धाण बुद्धाण कम्मचक्कमुक्काण (*९) णीरयाण (*१०) णिम्मलाणं (*११) गुरुआइरिय उवज्झायाण (*१२) पवत्ति थेर कुल यराण चाउव्वण्ण सवणसंघस्स (*१३) भरहेरावदेसु दससु पंचसु महाविदेहवंसेसु जे के वि जीवलोए संति साहवो संजदा तवस्सी। एदे मम मगल पवित्त एदे मम मगल करतु [एदे मम मगल होंतु]

◯रत्तिय दियह च भावविसुद्धो सिरसा काऊण अजलि मउलियहत्थे तिविहेण तियरणसुद्धो करेमि आलासय-

◯इस चिह्न का मध्यवर्तीपाठ प्रचलित प्रतियों में ऐसा है—

एदे ह मगल करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवदिऊण सिद्धे काऊण अजलि मत्थयम्मि पडिलेहिय अट्ठकत्तरिओ(य) तिविह तियरणसुद्धो ॥

—हे भंते गुरुदेव में दैवसिक दोषों का पडिक्कमण करना चाहता हूँ।

विशेष

पाठकों को चाहिए कि 'जो मए देवसिओ' से लेकर 'तस्स मिच्छा मे दुक्कडं' तक का पाठ सब पाटियों में जोड़कर बोलें वह पाठ इस प्रकार है —

जो मए देवसिओ अइयारो मणसा वचसा कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अर्थ—जो मैंने दैवसिक-दिनसंबंधी अतिचार (देशभंग) या अनाचार (सर्वभंग) को मनसे, वचन से, और कायसे किया होवे या कराया होवे या करते को भला माना होवे तो उसका पाप मेरे मिथ्या होवे।

प्रतिक्रमण पाटी

पडिक्कमामि भंते ! (दंसणपडिमाए) सम्मदंसणे दंसणायारो अट्ठविहो परिणत्तो तं जहा—

'णिस्संकिय-णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल-पहावणा चेव ॥'

सो परिहाविदो संकाए वा, कंखाए वा, विदिगिंछाए वा, परपासंड-पसंसाए वा, पसंथुईए वा, जो मए देवसिओ (राइओ) तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पडिक्कमामि भंते !

काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहा अणिण्हवणे ।
वंजण अत्थ-तदुभये अट्ठविहो णाणमायारो ॥

परिहाविदो, तं जहा—अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, पदहीणं वा, वजणहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, अकाले सज्झाओ कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा परिहाविदो अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं वामेलिदं, अण्णहा दिण्णं, अण्णहा पडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) पढमे थूलयदे हिंसानिरदिवदे वहेण वा, बंधेणवा, छेदेण वा, अइभारारोवणेण वा, अण्णपाणणिरोहेण वा, जो मए देवसिओ०

मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) विदिए थूलवदे असच्च विरदिवदे मिच्छोवदेसेण वा, रहो-अब्भक्खाणेण वा, कूडलेहकरणेण वा, णासावहारेण वा, सायारमंतभेदेण वा, जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) तिदिए थूलवदे थेणनिरदिवदे थेणप्पओगेण वा, थेण-हरियाऽऽदाणेण

निरुद्धरज्ञा-ऽइक्कमेण वा, हीण अहिय-माणुम्माणेण वा, पडिरूवय ववहारेण वा, जो मए देवसिओ० · · · ·
मिच्छा मे दुक्कड ५

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) चउत्थे थूलवदे अब-भविरदिवदे परनिवाहकरणेण वा, इत्तरिया-परिगहिदाऽ परिगहिदागमणेण वा, अणगकीडणेण वा, कामतिव्वा-भिणिवेसेण वा, जो मए देवसिओ० · · मिच्छा मे दुक्कडं ६

पडिक्कमामि भंते (वदपडिमाए) पचमे थूलवदे परिग्गह-परिमाणवदे खेचवत्थूण परिमाणाइक्कमेण वा, हिरण्णसु-वण्णाण परिमाणाइक्कमेण वा, धणधण्णाण परिमाणाइ-क्कमेण वा, दासीदासाण परिमाणाइक्कमेण वा, कुप्पप-रिमाणाइक्कमेण वा, जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कड ७

पडिक्कमामि भंते (वदपडिमाए) छट्ठे अणुव्वदे राइभोयण-विरदिवदे चउव्विहो आहारो, त जहा—असण, पाणं, खाइय, साइय चेदि॥-रत्तीए सय भुत्तो वा, अण्णे भु जो-विदो वा, अण्णं भु जिज्जते वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ८

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) पढमे गुणव्वदे दिसिवदे उड्ढवइक्कमेण वा, अहोवइक्कमेण वा, तिरियवइक्कमेण वा, खेत्तवड्ढीए वा, सदिअ तराधाणेण वा, जो मए देवसिओ०·· · मिच्छा मे दुक्कडं ६

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) विदिए गुणव्वदे देसवदे आणयणेण वा, विणिजोगेण वा, सद्दाणुवाएण वा, रूवाणुवाएण वा, पुग्गलक्खेवेण वा, जो मए देवसिओ० · मिच्छा मे दुक्कडं १०

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) तिदिये गुणव्वदे अणत्थदंडविरदिवदे कदप्पेण वा, कुक्कुइदेण वा, मोक्खरियेण वा, असमिक्खिय–अहिकरणेण वा, भोगोवभोगाणत्थक्केण वा, जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कडं ११

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) पढमे सिक्खावदे सामाइयवदे मणदुप्पणिधाणेण वा, वायदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा, अणादरेण वा, सदिअणुवट्ठाणेण वा, जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कडं १२

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) विदिए सिक्खावदे पोसहववदे अप्पडिवेक्खिय अप्पमज्जिय-उस्सग्गेण वा, अप्पडिवेक्खिय-अप्पमज्जिय-आदाणेण वा, अप्पडिवेक्खिय-

अप्पमज्जिय-मथारोनक्कमणेण वा, आवासयाणादरेण वा, सदियणुवट्ठाणेण वा, जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कड १३

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) तिदिये सिक्खावदे भोगोपमोगपरिमाणवदे सचित्ताहारेण वा, सचित्तसंबंधाहारेण वा, सचित्तसम्मिस्साहारेण वा, अभिसवाहारेण वा दुप्पक्काहारेण वा, जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कडं १४

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) चउत्थे सिक्खावदे अतिहिसंविभागवदे सचित्तणिक्खेवेण वा सचित्तपिहाणेण वा परव्ववएसेण वा मच्छरिएण वा कालाइक्कमेण वा जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कड १५

पडिक्कमामि भंते ! सल्लेहणाणियमे जीविदाससाए वा मरणाससाए वा मित्ताणुराएण वा सुहाणुबंधेण वा णियाणेण वा जो मए देवसिओ० मिच्छा मे दुक्कडं १६

रागेण व दोसेण व ज मे अकद दुयं पमादेण ।
ज मे किंचि वि भणिग तमहं सव्वं खमावेमि ॥१॥

खामेमि सव्वजीवेऽह सव्वे जीवा खमतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केणइ ॥२॥

इति प्रतिक्रमण पाटी

विशेष—शेषप्रतिमाओं की प्रतिक्रमणपाटी परिशिष्टमें देखें ।

हिन्दी में प्रतिक्रमणपाटी

पडिक्कमामि भंते ! सम्यग्दर्शनके विषै—

'निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सित, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य और प्रभावना'—यह आठ भेद आचार कहा है सो त्यागा होवे। जैसे शंका (जिनवाणी में शंका) कीनी होवे, कांक्षा (परदर्शन की वांछा) कीनी होवे, विचिकित्सा (फलके प्रति संदेह करके) कीनी होवे परपाखंडी की प्रशंसा कीनी होवे परपाखंडी का परिचय कीना होवे ।१।

ऐसा करते दैवसिक (—रात्रिक) अतिचार या अनाचार जो मैंने मनसे, वचनसे, कायासे, कीना होवे या कराया होवे या करते को भला माना होवे तो उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥

पडिक्कमामि भंते !

'कालका, विनयका, उपधानका, बहुमानका, अनिह्नव का, व्यञ्जनका, अर्थका तदुभयका'—यह आठ भेद सम्यग्ज्ञानके विषै आचार कह्या है सो त्यागा होवे। जैसे अक्षरहीन वा स्वरहीन वा पदहीन वा व्यञ्जनहीन वा अर्थहीन वा ग्रथहीन पढा होवे, अकालमें सज्झाय (स्वाध्याय) कीना होवे, कराया होवे, काल में नहीं किया होवे, विधिहीन किया होवे, खोट मिलाई होवे, अधिका मिलाया होवे, विपरीत मिलाया होवे, अन्यथा दिया (समझाया) होवे अन्यथा जाना (समझा) होवे, आवश्यकोंमें हीनता लाई होवे, ऐसा करते जो दोष लागा होवे तो उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होय।२।

पडिक्कमामि भंते ! पहला थूलव्रत हिंसाविरतिव्रतके विषै

बध (—रोष से गाढा घात) किया होवे, बध (रोषसे गाढा बाधा) किया होवे, छेद (कोई अवयव छेदन) किया होवे, अधिका भार लादा होवे, अन्न पाणीका निरोध किया होवे। ऐसा करते देवसिक० उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे।३।

पडिक्कमामि भंते ! दूजा थूलव्रत असत्यविरतिव्रत के विषै

मिथ्योपदेश (झूठी सलाह) दिया होवे, रहो अभ्याख्यान (स्त्री मित्र आदि की गुप्त मार्मिक वातका) किया होवे, कूटलेखा (झूठे बही चोपडे) किया होवे, न्यास (अमानत धरोहर) का हरण किया होवे, साकार मन्त्रभेद (एकान्त सभापण का प्रकटी करण) किया होवे, ऐसा करते देवसिक० उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे।४।

पडिक्कमामि भंते ! तीजा थूलव्रत अचौर्याणुव्रतके विषै

स्तेन प्रयोग (चोरको उपाय बतानेरूप) किया होवे, चोरा हृताद्दान (चोरी का समझकर माल लेना) किया होवे, विरुद्ध राज्यातिक्रम (चुंगी चुराने, निषिद्ध वस्तु लेजाने आदि रूप) किया होवे, हीनाधिक मानोन्मान (हीन अधिक तोल मोल करने या गज छूटे हीन अधिक मापके रखने रूप) किया होवे, प्रतिरूपक व्यवहार (नकली सिक्कोंका चलन या हीनमूल्य की वस्तु की मिलावट रूप) किया होवे। ऐसा करते दैवसिक० · 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ५

पडिक्कमामि भंते ! चौथा थूलव्रत स्वदारसंतोषव्रत के विषै

परका विवाह कराया होवे, रखैल नारी से गमन किया होवे, बाजारू व्यभिचारिणी से गमन किया होवे, अनंग क्रीडन किया होवे, कामभोग तीव्र अभिलाषा से भोगे होवे । ऐसा करते दैवसिक ·· उसका 'मिच्छा में दुक्कड' होवे। ६

पडिक्कमामि भंते ! पांचवां थूलव्रत परिग्रहपरिमाणव्रतके विषै

खेत और घर का, रूपा और सोनाका, धन और धान्यका दासी और दासका तथा कुप्य भांड का परिमाणवृद्धि किया होवे। ऐसा करते दैवसिक उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे। ७

पडिक्कमामि भंते ! छट्ठा अणुव्रत रात्रिभोजनत्यागके विषै

आहार चार प्रकार का है, जैसे अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, सो आप रात्रिमें खाया होवे, औरोंको खिलाया होवे, औरोंको खाते हुवोंको भला माना होवे तो उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे। ८

पडिक्कमामि भंते ! पहला गुणव्रत दिग्व्रतके विषै

ऊपरकी सीमाका अतिक्रमण, या नीचेकी सीमाका अतिक्रमण या, तिरछे क्षेत्रकी सीमाका अतिक्रमण किया होवे, क्षेत्र को बढ़ाया होवे, क्षेत्रनियम की स्मृति को भुलाया होवे, ऐसा करते दैवसिक उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे । ६

पडिक्कमामि भंते ! दूजा गुणव्रत देसव्रत के विषै

क्षेत्रके बाहिर विषये आनयन (मंगाना) किया होवे, विनियोग (भेजना) किया होवे, शब्द का संकेत किया होवे, रूप का संकेत किया होवे, पुद्गल (चिनली या कोई चिन्ह) फैंका होवे ऐसा करते दैवसिक" 'उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे । १०

पडिक्कमामि भंते ! तीजा गुणव्रत अनर्थदंडव्रतकेविषै—

कन्दर्प (हसी ठठोली) किया होवे कुक्कुचिह (अश्लीलभाषण) किया होवे, वृथा प्रलाप किया होवे, बिना प्रयोजन कार्य-व्यापार किया होवे, भोगोपभोग की अनावश्यक सामग्री बढ़ाई होवे, ऐसा करते दैवसिक० उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे ।।११

पडिक्कमामि भंते ! पहला शिक्षाव्रत सामायिक व्रत के विषै

मनसे दुष्ट चिन्तन किया होवे, वचन से दुष्ट भाषण किया होवे, कायसे दुष्ट व्यापार किया होवे, सामायिक में आदर नहीं राखा होवे, पाठ अथवा समय की स्मृति ठीक नहीं राखी होवे। ऐसा करते दैवसिक० उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ।।१२।।

पडिक्कमामि भंते ! दूजा शिक्षाव्रत प्रोषधव्रत के विषैं

बिना देखे शोधे ही शरीर के मल को सेवण किया होवे, बिना देखे शोधे ही उपकरणों को ग्रहण किया होवे, बिना देखे शोधे ही आस्तरण (चटाई) आदि बिछाया होवे, आवश्यककर्मों में आदर नहीं किया होवे, पाठ और विधिकी स्मृति ठीक नहीं राखी होवे। ऐसा करते दैवसिक० " उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१३॥

पडिक्कमामि भंते ! तीजा शिक्षाव्रत भोगोपभोग परिमाणव्रत के विषैं

सचित्त आहार किया होवे, सचित्त सम्बधाहार किया होवे, सचित्त सम्मिश्र आहार किया होवे, अभिषव (दृष्यद्रव) आहार किया होवे, ऐसा करते दैवसिक०" ""उसका 'मिच्छा मे दुक्कडं' होवे ॥१४॥

पडिक्कमामि भंते ! चौथा शिक्षाव्रत अतिथि संविभागव्रत के विषैं

अचित्त में सचित्तको मिलाया होवे, सचित्तसे ढाका होवे, पर व्यपदेश (दानकेलिये परवस्तु को अपनी बतलाना न देने के लिए अपनी को परवस्तु बतलाना) किया होवे, मात्सर्यभाव किया होवे कालका अतिक्रमण कियाहोवे। ऐसाकरते दैवसिक० " उसका 'मिच्छा मे दुक्कडं' होवे ॥१५॥

पडिक्कमामि भंते ! सल्लेखना का नियम विषै

जीवितकी वांछा कीनी होवे, मरणकी वांछा कीनी होवे, मित्रों में अनुराग रखा होवे, सुखानुबंध (पूर्वसुखों का बारबार स्मरण) किया होवे, निदान किया होवे। ऐसा करते दैवसिक॰ उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१६॥

रागभाव से या द्वेषभाव से या प्रमाद के वशीभूत होने से जो मेरे से अकृत (पाप) हुआ हो या जो कुछ मेरे से कहा गया हो तो मैं उस सबको क्षमा कराता हूँ ॥१॥

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं। सारे जीव मुझ अपराधी को क्षमा करें। सारे प्राणियों में मेरे मित्रभाव है किसी के साथ वैर नहीं है ॥२॥

इति हिन्दी प्रतिक्रमण पाटी ॥

सूचना

हिन्दी प्रतिक्रमण पाटी के बारे में—

पाठकों की सुविधा के लिये प्राकृत पाटी के अर्थ सरीके हिंदी पाटी लिखी गई है यह पाटीकी पाटी है। और कोष्ठक ( ) चिन्ह में अर्थ भी स्पष्ट किया गया है। सो कोष्ठकका अर्थवाला अंश पाटी बोलते समय नहीं बोलना। तथा हिंदीकी प्रत्येक पाटी के अंत भागमें 'ऐसा करते दैवसिक०   " उसका मिच्छा मे दुक्कड' ये अपूर्ण वाक्य दिये गये हैं उसको पडिक्कमामि भंते सम्यग्दर्शन के विषै— इस पाटीके नीचे भागमें मोटेअक्षरों में दिये गये पाठ के अनुसार पढकर पूरा बोलना चाहिये

णिसिहीभक्तिआलोचना दण्डक पाठ—

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणणिसिहियभत्ति–काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं ।

[णमो चउवीसण्हं तित्थयराणं उसहा ऽऽइमहावीर-पज्जवसाणाणं,] इण [एव] णिग्गंथ पाव-यण [-सच्च] अणुत्तरं केवलिय णेयाइय सामाइय [-पडि-पुण्ण] ससुद्धं सल्लघट्टणं १, सिद्धिमग्ग सेढिमग्ग खंति-मग्गं १ मुत्तिमग्ग मोक्खमग्ग पमोक्खमग्ग णिज्जाणमग्ग णिव्वाणमग्ग सव्वदुक्ख-परिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाण मग्ग अवितहं अविसंधि२, पवयण उत्तमं ॥

तं सद्दहामि, तं पत्तीयामि ३, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदो उत्तरं णत्थि, ण भूद, ण भविस्सदि, णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंत करंति, परिवियाणंति ।

समणो ऽमि, संजदो ऽमि, उवरदो ऽमि, उवसंतो ऽमि उवधि णियडि-माण माया-मोस मिच्छाणाण मिच्छादंसण

[ ] इस चिन्ह का मध्यवर्ती पाठ प्रतियों में नहीं मिलता ।

१ सल्लघट्टाण पाठ' । २ अविसंधि 'पाठ ३ पत्तियामि' पाठ

मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोऽमि सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्त च रोचेमि। जो जिणवरेहिं पण्णत्तो [तस्स धम्मस्स आराहणाए अब्भुट्ठिओमि विराहणाए विरदोमि]

एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइयारो अणाचारो [-तस्स भंते पडिक्कमामि मए पडिक्कंत तस्स मे सम्मत्तमरणं पंडियमरण वीरियमरण दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगम्मण सम्म समाहिमरण जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झ]

इति पडिक्कमणणिसिही-भक्तिः

बारहवदेसु पमादाइकयाइचारसोहणाइं छेदो...... होउ मज्झ

अरहंत सिद्ध–आयरिय ...
सम्मत्तपुव्वग सुव्वद दिढव्वद समारहिय
...मे हवदु।

इति श्रावक प्रतिक्रमणं द्वितीय

श्री वृषभदेवको आदि लकर तीर्थंकरोंको नमस्कार हो।

यह ही निर्ग्रंथ प्रवचन ऐसा है, जो सर्वोत्कृष्ट है, केवलि प्रणीत है,

है, सामायिक-रत्नत्रय प्राप्तिका कारण है, परिपूर्ण है, सर्वप्रकार से शुद्ध है, शल्यों को काटने वाला है, आत्मसिद्धिका मार्ग है, ध्यानका कारण होने से क्षपक आदि श्रेणियों का मार्ग है, क्षमा का मार्ग है, अपरिग्रह मार्ग है, मोक्ष का मार्ग है, त्याग का मार्ग है, परम स्वाधीन मार्ग है, भवसागरका निवारण मार्ग है, आत्म सुखास्वादनरूप मार्ग है, सारे दुःखों का नाशक मार्ग है, सदाचार का निर्वाहमार्ग या निर्वाण मार्ग है, यथार्थ रूप और विपरीतता रहित तथा असंदिग्ध मार्ग है, ऐसा यह उत्तम प्रवचन है।

मैं उस प्रवचनको श्रद्धान में लाता हूँ प्रतीति में लाता हूँ मन से रोचता हूँ और हृदय से स्वीकारता हूँ।

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को छोड़कर दूसरा कोई उत्तम शास्त्र नहीं है, न पहले हुआ, न आगे होगा, इस निर्ग्रन्थ प्रवचन से ज्ञान के द्वारा दर्शन के द्वारा चारित्र के द्वारा सूत्र के द्वारा सामायिक के द्वारा जीव कृतकृत्य होते हैं, ज्ञान को पाते हैं स्वाधीन होकर संसार से छूटते—सम्पूर्ण सुख को पाते हैं सारे दुःखों का अन्त करते हैं, समता को पाते हैं।

मैं श्रमण हूँ, संयत हूँ, उपरत (विरक्त) हूँ, उपशांत हूँ उपधि (परिग्रह) निकृति (शठता) मान माया मृषावाद मिथ्या ज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचारित्र को छोड़ता हूँ सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को सत्य समझकर रोचता हूँ।

जो श्री जिनेन्द्र ने कहा उस धर्म पालता के उद्यमी हूँ विराधना से दूर रहता हूँ,

इन सब में जो कोई मेरे दिन सम्बन्धी (रात्रि सम्बन्धी) अतिचार अनाचार हुए हों तो उसको हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैं पडिक्कमाता हूँ कि सोधता हूँ।

भावपूर्वक प्रतिक्रमण की है उसके प्रसाद से मेरे दुःखक्षय कर्मक्षय रत्नत्रय लाभ सुगति में गमन सम्यग्दर्शन समाधिपूर्वक मरण, सम्यक्त्वपूर्वक मरण, पंडितमरण, वीर्यमरण और जिनेन्द्र के गुणों की सम्प्राप्ति हो।

बारह व्रतोंमें प्रमाद आदि से किये गये अतिचार (दोष) को सोधने निमित्त मेरे छेदोपस्थापन होवे।

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांच परमेष्ठियों की साक्षी से मेरे सम्यग्दर्शन पूर्वक उत्तमव्रत दृढव्रत भले प्रकार आराधित होवे।

इसप्रकार श्रावक प्रतिक्रमण में द्वितीय कृतिकर्म हुवा ॥२॥

अथ वीरचारित्रभक्तिनाम तृतीय कृतिकर्म

क्रिया—बैठकर शुक्ति मुद्रा से कृत्यविज्ञापना पाठ पढ़ना फिर भूमि स्पर्शनात्मक नमस्कार फिर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठों को (पृ ६ स १३ पर देखो) पढ़ना।

'विशेष'

कायोत्सर्ग में सर्वत्र ६ जाप दिया जाता है परतु यहां दैवसिक प्रतिक्रमण में ३६ बार (१०८ उच्छ्वासोंका) और रात्रिक प्रतिक्रमण में १८ बार (५४उच्छ्वासोंका) 'णमोकार मंत्र' का जापदेना

कृत्य विज्ञापना पाठ—

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार-विसोहि-णिमित्त पुव्वायरियकमेण णिट्ठिदकरण-वीर-चारित्तभत्ति-काउस्सग्गं करेमि

वीरचारित्रभक्ति पाठ (सयुक्त)

क्रिया—खड़े होकर पढ़ना

वीरो जर मरण रिऊ वीरो विण्णाण-णाण संपण्णो ।
लोयस्सुज्जोययरो जिणवरचंदो दिसउ बोहिं १

श्रीवीरप्रभु जरा और मरण के नाशक हैं वे विज्ञान और ज्ञान से सपन्न हैं, वे लोक (भावलोक) का उद्योत करने वाले हैं, वे जिनचन्द्र बोधि रत्नत्रय को प्रदान करें ।।१।।

य सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः सर्वान्सदा सर्वथा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः १
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्र-महितो वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः

वीरात् तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयो हे वीर ! भद्रं दिश ३

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं
ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके
संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ४

१—जो सारे चराचर द्रव्यों को और उनके सहभावी गुणों को और क्रमभावी पर्यायोंको भूत भविष्य वर्तमानकाल संबंधी होचुके होनेवाले—होरहे—सबको सदा और सर्वप्रकार से एक साथ प्रतिक्षण में जानता है वह 'सर्वज्ञ' कहलाता है। उन सर्वज्ञ भगवान महावीर जिनेश्वर को नमस्कार हो।

२—श्री वीरप्रभु, जो सारे इन्द्र धरणेन्द्रोंसे पूजे जा चुके हैं ज्ञानीजन जिनको आश्रित हुए हैं जो आत्मासे कर्मो को नष्ट कर चुके उन प्रभु को नमस्कार है, जिन से यह अनुपम धर्मतीर्थ प्रवृत्त हुआ है जिनकी तपस्या घोर है जिनमें श्री धृति कीर्ति कान्ति रूप दैवी शक्तियां समष्टिरूप से विद्यमान हैं, ऐसे हे वीर ! भद्र देवें पापनाश करें।

३—जो भव्य जीव ध्यानमें एकचित्त होकर संयमयोग युक्त हुए वीर के चरणों को नमते हैं, वे निश्चय ही शोक रहित होते और विषम संसार दुर्ग को तिरते हैं।

चारित्रभक्तिपाठ—

चारित्र सर्वजिनैश्चरित प्रोक्त च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पचभेद पचमचारित्रलाभाये १
व्रतसमुदयमूलः सयमस्कन्धबन्धो
यमनियमपयोभिर्वर्द्धितः शीलशाखः ।
समिति कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवाल॰
गुण-कुसुम-सुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः २
शिवसुखफलदायी यो दयाच्छाययोद्धः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरित-रविजताप प्रापयन्नन्तभाव
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ३

१—सभी तीर्थंकरों ने चारित्र को पालन किया और सारे शिष्यों के लिये उपदेश दिया, वह चारित्र पांच भेदरूप हैं, मैं उसे नमन करता हू।

२—वह चारित्र-वृक्ष हमारे संसारके विभवरूप रागद्वेष के नाशका कारण होवे, जिनके जडें व्रतरूप हैं, कांड (गोदला) संयमरूप है जो यमनियम के जलसे बढ़ाया गया है, शाखा शीलरूप हैं, कलिया पांच समिति रूप हैं कोपलें तीनगुप्ति रूप हैं, फूलोंकी सुगन्धि विविधगुण रूप हैं, पत्ते बारह तपरूप हैं।

३—जो मोक्षफल दाता है, दया की छाया से सघन है, भव्यजीव रूपी पथिकों का खेद मिटाने समर्थ हैं, और [illegible] सूरज के ताप को मिटाने वाला है।

धर्ममाहात्म्यम्—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो १

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय २ ॥इति॥

१ धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है यह अहिंसात्मक संयमस्वरूप और तपोमयी है। जिसका चित्त सदा धर्ममें है उसे देव भी नमते पूजते हैं।

२ धर्म सारे सुखों की खानि है, हितकारी है, ज्ञानी धर्म को प्राप्तकरते हैं धर्म से शिवसुख पाया जाता है, उस धर्म को नमस्कार हो, धर्मको छोडकर संसारी जीवों का दूसरा कोई मित्र नहीं है, उसका मूल दया है, मैं धर्म में चित्त लगाता हूँ, हे धर्म ! मुझे पालनकर ।

वीरचारित्रभक्ति आलोचनादंडक

क्रिया—बैठकर पढ़ना

इच्छामि भंते ! वीरचारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं।
जो मए देवसिओ [-राइओ, पक्खिओ, चाउम्मा-

मिश्रो सवच्छरिश्रो] अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो काइश्रो वाइश्रो माणसिश्रो दुच्चरिश्रो दुब्भासिश्रो दुच्चिन्तिश्रो णाणे दसणे चरित्ते सुत्ते सामाइये वारसण्हं वदाणं विराहणाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैंने वीरचारित्रभक्ति सम्बन्धी कायोत्सग किया उसकी आलोचना करना चाहता हू। जो मैंने दिन सम्बन्धी (रात्रिसम्बन्धी) अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग किया हो, जो ज्ञानमें दर्शनमें चारित्रमें सूत्रमें सामायिकमें और बारहव्रतों की विराधना के विषयमें कायसे बुरा किया, वाणीसे बुरा बोला, मनसे बुरा विचारा हो तो उसका मेरे पाप मिथ्या होव।

इति वीरचारित्रभक्तिः

बारहपदेसु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावण होउ मज्झ ।

अरहंत सिद्ध-आयरिय उवज्झाय-सव्वसाहु-सक्खियं सम्मत्तपुव्वग सुव्वद दिढव्वद समारोहियं मे हवदु मे हवदु मे हवदु ।

इति श्रावकप्रतिक्रमणे तृतीय कृतिकर्म

बारह व्रतोंमें प्रमाद आदि से किये गये अतिचार (दोष) को सोधने निमित्त मेरे छेदोपस्थापन होवे।

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांच परमेष्ठियों की साक्षी में मेरे सम्यग्दर्शन पूर्वक उत्तमव्रत दृढव्रत भले प्रकार आराधित होवे ।

इसप्रकार श्रावक प्रतिक्रमण में तृतीय कृतिकर्म हुवा ॥३॥

शांतिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिनामचतुर्थं कृतिकर्म

शान्ति भक्ति संग्रहः

कृत्य विज्ञापना पाठ

क्रिया—बैठकर पढना

अथ देवसियपडिकमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण सिरिशांतिचउवीसतित्थयरभत्ति–काउस्सग्गं करेमि ।

क्रिया—भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना खडेहोकर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठों को (पृष्ट ६ से १३ तक देखो) पढना—फिर भक्ति पाठ पढना ।

अथ शान्त्यष्टकम्

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पादद्वयं ते प्रजाः
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः संसार-घोरार्णवः ।
अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमंडलो
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपाद-सलिलच्छायानुरागं रविः । १

क्षुद्रार्त्तिविषदुष्टदुर्ग्रहविषज्वालावलीविभ्रमो
विपाभेषजमन्त्रतोयहवनैर्यान्ति प्रशान्तिं यथा ।
तद्वत् पादपद्मयुगलस्तोत्रोन्मुखानां नृणां
विघ्ना कायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मय. २

संतप्तोत्तमकाञ्चनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धि गौरद्युते !
पुंसां त्वत्प्रणामकरणात् पीडा प्रयान्ति क्षयम् ।
उद्यद्भास्कर विस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्र यथा शर्वरी ३

त्रैलोक्येश्वरभङ्गलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान्
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिण. ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानलान्
न स्याच्चेत् तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगा वारणम् ४

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते ! विभो !
नानारत्नपिनद्धदण्डरुचिरश्वेतातपत्र त्रय !
त्वत्पाद द्वय-पूत-गीतरवत शीघ्रं द्रवन्त्यामया
दर्पाध्मात-मृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जरा' ५

दिव्यस्त्री-नयनाभिराम ! विपुलश्रीमेरुचूडामणे !
भास्वद् बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामण्डल !
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं
सौख्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते ६

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयन्–
तावद् धारयतीह पङ्कजवनं निद्राऽतिभारश्रमम् ।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदयस्–
तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ७
शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र ! शान्तमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्
सम्प्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः ।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो दृष्टिं प्रसन्नां कुरु
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः ८

इति शान्त्यष्टकम् ।

शान्त्यष्टक का हिन्दी रूपान्तर

प्रेमभक्तिमें लीन न होते जो जन तेरे चरण शरण,
क्योंकि उन्हें है शेष भोगना भवसागरदुख जन्म मरण ।
जब अति उग्र ग्रीष्मऋतुका रवि जगती तल पर तपता है,
छाया चन्द्र किरण शीतलजल तब सबके मन लगता है ॥१॥
विद्या औषध मंत्र हवन औ जलसिंचन द्वारा जैसे,
होता है उपशान्त शीघ्र ही चंड सर्प का विष, तैसे—
प्रभो ! आपके पद पंकज का जो नर ध्यान स्तवन करते,
विस्मय ! वे अपना तनघातक विघ्नजाल सहसा हरते ॥२॥
तप्त सुवर्णकान्ति तन ! हे जिन ! जो जन नतमस्तक होते
तुम्हरे परम भक्तिभाव से वे अपनी पीड़ा खोते ।
ऐसे, जैसे अखिल विश्वकी दृष्टि हरी निशि अँधियारी,
उगते रवि के किरण तेज से तुरत विलय होती सारी ॥३॥

इन्द्र अहो ! चक्रपति का भी जिस पर कुछ वश चला नहीं
जन्म-जन्म में जीव भ्रमाये काल दावानल उग्र कही ।
जो तुव पदपंकज की स्तुति गंगा-शरण यह नहि पाता
तो क्योंकर कोइ भवि-प्राणी उसमे बचकर शिवपुर जाता॥४॥

रत्नजड़ित अतिरुचिर द्युतियुत तीन छत्र शिर पर सोहैं,
लोकअलोक विश्व के ज्ञायक ! प्रभो आप सम और को है ?
जो तुम पदका ध्यान करैं, नित रोग समूह मिटें उनके
क्रूर बली जब सिंह गरजता भगते ज्यों कुञ्जर वनके ॥५॥

मेरु शिखर पर देव देवियों के नयनोत्सवके कर्ता !
विश्वदृष्ट भामंडलमे प्रभु ! उदित सूर्य द्युति के हर्ता !
तेरे पदपंकज युग की स्तुति करतेही भवि जीव यहै,
अनुपम शाश्वत निराबाधसुख सार अचिंत्य अनन्त लहै ॥६॥

प्रभा पुञ्ज सूरज की लाली नभ में छिटक नहीं पाती,
तब तक ही पंकज की कलियां विकसित नहीं होने पाती ।
जब तक तेरे चरणयुगल का भगवन् ! ध्यान नहीं धरते
तब तक प्रायः सभी जीव ये भारी पाप वहन करते ॥७॥

तुव पद पंकज के आश्रय से विषयभाव तजि शांत हुए,
शान्ति जिनेश ! शांतिइच्छुक जन घने शांति को प्राप्त हुए ।
चरण शरण में लीन भक्ति से 'शान्त्यष्टक' पढ़ने वाले-
मुझ सेवक को प्रभो ! कृपाकर निर्मल दृष्टि बना डाले ॥८॥

—अनुवादक दीपचन्द पाड्या

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः ।
व्यधात् पुरस्तात् स्वत एव शांतिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशांतिम् ॥१

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् २
राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्र
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ३
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्रांजलि देवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतांतचक्रम्४
स्वदोषशान्त्या विहितात्मशांतिः शांतेर्विधाता शरणं गतानाम्
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शांतिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ५

—स्वयम्भूस्तोत्रे श्रीस्वामि-समन्तभद्रः ।

'नित्यनियमपूजा' का शान्तिपाठ भी पढा जा सकता है आदि ।

इति शान्तिभक्तिसग्रहः

चतुर्विशतितीर्थङ्करभक्तिसग्रहः—

चउवीसं तित्थयरे उसहाईवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वे समण गणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि १

१—श्री वृषभदेव आदि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थकरों, सारे श्रमणों को गणधरो आचार्यों को और सिद्धों को मैं मस्तक नमाकर नमस्कार करता हू ।

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्त गताः
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः ।

ये साधिन्द्र-सुरा ऽप्सरो गण- शतगीत-प्रणुता ऽ चितास्
तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥१॥
नाभेय देवपूज्य जिनवरमजित सर्वलोकप्रदीप
सर्वज्ञ सम्भवाख्य मुनिगणवृषभ नन्दन देवदेवम् ।
कर्मारिघ्न सुबुद्धि वरकमलनिभ पद्मपुष्पाभिगन्ध
क्षान्त दान्तं सुपार्श्व सकलशशिनिभ चन्द्रनामानमीडे ॥२॥
विख्यात पुष्पदन्त भवभयमथन शीतल लोकनाथ
श्रेयास शीलकोष प्रवरनरगुरु वासुपूज्य सुपूज्यम् ।
मुक्त दान्तेन्द्रियाश्व विमलमृषिपतिं सिंहसैन्य मुनीन्द्रं
धर्म सद्धर्म केतु शमदमनिलय स्तौमि शान्ति शरण्यम् ॥३॥
कुंथुं सिद्धालयस्थ श्रमणपतिमर त्यक्तभोगेषुचक्र
मल्लिं विख्यातगोत्र खचरगणनुतं सुव्रत सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्य नमीन्द्र हरिकुलतिलक नेमिचन्द्र भवान्त
पार्श्व नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्द्धमान च भक्त्या ॥४॥

अर्थ—(जो लोक में एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं, लोक अलोक रूप ज्ञेय समुद्र के पारगामी हैं, जो भव जाल—ससार बन्धनों के कारण मूल रागद्वेष और मोह को अच्छी तरह से शमन कर चुके हैं चाद और सूरज से भी अधिक तेजस्वी हैं जो इन्द्र देवगण और देवागनाओं के समूहों द्वारा भले प्रकार

प्रणत और अर्चित हुए—कीर्तित वन्दित और महित हुए हैं उन श्री वृषभदेव से आदि लकर वीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करों को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

२—देवों से पूज्य श्री ऋषभजिनेन्द्र को, सर्व लोक को दिपाने में दीपक रूप अजित जिनेश्वर को, सर्वज्ञ श्री शंभव को, मुनिगणों में श्रेष्ठ देवदेव श्री अभिनन्दन को, कर्म शत्रुओं के नाशक सुमतिनाथ को, पद्मपुष्प के समान गंधवाले श्री पद्मप्रभ को, क्षमाशील जितेंद्रिय श्री सुपार्श्व को, और पूर्णचन्द्र तुल्य श्री चन्द्रप्रभ को मैं स्तुति करता हूँ।

३—विश्व विख्यात श्री पुष्पदन्त को, भवभय के नाशक त्रिलोकीपति श्री शीतल को, अठारह हजार शीलों के धारक श्री श्रेयोनाथ को, श्रेष्ठ पुरुषों के भी गुरु श्री वासुपूज्य को, मुक्ति पद को प्राप्त—तथा इन्द्रिय अश्वों को दमन कर चुके ऐसे श्री विमल ऋषिपति को, मुनीन्द्र श्री सिंहसेन के पुत्र अनन्तनाथ को समीचीन धर्म के ध्वज रूप श्री धर्म को, शम दम के धारक शरण रूप श्री शान्तिनाथ को स्तुति करता हूं।

४—सिद्ध स्थान में विराज श्री कुन्थु को, भोग बाण और चक्र के त्यागी श्रमणपति श्री अरनाथ को, विख्यात वशी श्री मल्लिनाथ को, देवविद्याधरों से पूजित सौख्य राशि रूप श्री सुव्रत नाथ को, देवेन्द्र पूज्य श्री नमिनाथ को, हरिवंश में तिलक रूप व संसार का नाश कर चुके ऐसे श्री नेमिचन्द्र को, नागेन्द्र से वन्द्य श्री पार्श्वनाथ को और श्री वर्धमान स्वामी को शरण रूप मान कर मैं भक्ति से प्राप्त होता हूँ।

॥ इति ॥

वचालुइशर्वे—आदि अपभ्रंश भाषा का प्रसिद्ध पाठ तथा चतुर्विंशति तीर्थंङ्करों के स्तुति परक विभिन्नभाषात्मक दूसरे भी पाठ पढ़े जा सकते हैं।

शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकीआलोचना

इच्छामि भंते। भत्ति चउवीसतित्थयर-भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीस—अतिसय—विसेस—संजुत्ताणं बत्तीस देविंद मणि मउड मत्थय महियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि मुणि-जइ अणगारोवगूढाणं थुइ सय सहस्सणिलयाणं उसहाऽऽइ वीर--पच्छिम मंगल महा पुरिसाणं भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं सम्म समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं॥

अर्थ—हे भंते। हे गुरुदेव। मैंने शान्ति चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूं जो पंच महाकल्याणकों को प्राप्त हुए हैं अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त हैं चौंतीस अतिशयों से विशेष संयुक्त हैं बत्तीस देवेन्द्रों के रत्न जटित मुकुट शोभित मस्तकों से पूजित हैं बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि मुनियति और अनगार इन चार

प्रकार के साधु वृन्दों से सेवित हैं लाखों स्तुति के स्थान रूप हैं ऐसे वृषभ आदि वीर पर्यन्त चौबीस मंगल रूप महा पुरुषों को मैं भक्ति से सदा अर्चता पूजता वंदता और नमता हूँ।

(भाव पूर्वक की गई इस भक्ति के प्रसाद से) मेरे दु खों का क्षय होवे कर्मों का क्षय होवे रत्नत्रय का लाभ होवे सुगति में गमन होवे सम्यग्दर्शन होवे समाधिपूर्वक मरण होवे और जिनेन्द्र के गुणों की सम्प्राप्ति होवे।

प्रतिक्रमण आलोचना-दण्डक पाठ

इच्छामि भंते पडिक्कमणाइचार आलोचेउ तत्थ देमासिआ आसणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्दासिया काउस्सग्गासिआ पणामासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमणाए छसु आवासएसु परिहीणदा जा मए अच्चासणा मणसा वचसा कायेण कदा वा कारिदा वा कीरतो वा समणुमण्णिदो। तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

अर्थ—हे भंते। हे गुरुदेव। मैं प्रतिक्रमण संबंधी अतिचार दोषों का आलोचन करना चाहता हू उसमें देशाश्रित आसनाश्रित स्थानाश्रित कालाश्रित मुद्राश्रित कायोत्सर्गाश्रित प्रणामाश्रित आवर्ताश्रित प्रतिक्रमण क्रिया में छह आवश्यकों के विषय में हुई हीनता (कमी) के द्वारा जो मैंने आसादना (आगम से विरुद्धता) मन से या वचन से या काय से कीनी होवे कराई होवे करते को भला माना होवे। उसका दुष्कृत मेरे मिथ्या होवे।

इति श्रावक प्रतिक्रमणे चतुर्थं कृतिकर्म ॥४॥

प्रतिक्रमण सम्बंधी समाधिभक्ति-कृत्यविज्ञापना

क्रिया—समाधि भक्ति की कृत्यविज्ञापना बोल कर

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए आलोयण सिरि सिद्धभत्ति–पडिक्कमणणिसिहीभत्ति णिट्ठिदकरण वीर-चारित्तभत्ति सिरिसंतिचउवीसतित्थयरभत्ती काऊण तस्स हीणाहियत्ताइदोसविसोहणट्ठमसमाहिभत्ति काउस्सग्गं करेमि।

अथ दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण में १ आलोचन श्री सिद्ध भक्ति २ प्रतिक्रमण निषधाभक्ति ३ निष्ठितकरण वीर चारित्रभक्ति और ४ श्री शान्तिचतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति को करके उसके हीनत्व अधिकत्व आदि दोषों की विशुद्धि के लिए समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

क्रिया—खड़े ९ नमोकार मंत्र का ९ बार जाप देना।

समाधि भक्ति पाठ

पृष्ठ ४० से ४४ तक मुद्रित ४ पाठों में से सब या कोई एक पाठ पढ़ना और आलोचना पढ़ कर ऐसे तीन बार अंत में

आसही !   आसही !!   आसही !!!

बोल कर प्रतिक्रमण क्रिया समाप्त करना।

इति प्रतिक्रमण नाम चतुर्थ आवश्यक कर्म

अथ प्रत्याख्यान नाम पचम आवश्यक कर्म

'ओं नमः सिद्धेभ्यः। अहं अमुक परिग्रह अथवा अमुक आहार अमुककालपर्यन्त प्रत्याख्यामि':—
'ऐसा पढ़कर प्रत्याख्यान धारण करे।

और मेरे अमुक परिग्रह का या अमुक जाति के आहार का त्याग इतने समय के लिए है-ऐसा सकल्प करें'

कृत्य विज्ञापना

'अथ प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं'—

ऐसा पढ़कर

९ बार नमोकार मनका जाप देकर पृष्ठ ६२-६३ पर लिखी लघुसिद्धभक्ति और सिद्धभक्ति आलोचना को पढ़ें इसी प्रकार जब पूर्व प्रत्याख्यान को छोड़े तो—

कृत्य विज्ञापना

'अथ प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानु-क्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं—' ऐसा पढ़कर ९ बार नमोकार मन का जाप कर वही लघु सिद्ध भक्ति और सिद्धभक्ति की आलोचना पढ़ें।

इति प्रत्याख्यान नाम पचम आवश्यक कर्म

कायोत्सर्ग नाम षष्ठ आवश्यक कर्म

क्रिया—खड़े खड़े और शक्ति न होतो बैठे बैठे पढ़ना।

काउस्सग्गं मोक्खपहदेसयं घाइ कम्म-अदिचारं
इच्छामि अहिट्ठादुं जिणसेविदंदेसिदत्तादो ॥१॥
एगपदमस्सिदस्स वि जो अदिचारो दु रागदोसेहिं
गुत्तीहिं वदिकमो वा चदुहिं कसाएहिं व वदेहिं ॥२॥
छज्जीवणिकाएहिं य भयमय ठाणेहिं बम-धम्मेहिं
काउस्सग्गं ठामि य तं कम्मणिघादणट्ठाए ॥३॥

अर्थ—कायोत्सर्ग मोक्षमार्ग का उपदेशक है सावद्ययोगों के दोषों को मिटाने वाला है ऐसे कायोत्सर्ग को जिसे श्री जिनेंद्र देव ने आत्महितार्थ धारण किया और विश्व के लिये उपदेश दिया है मैं स्वीकार करना चाहता हूँ। आगम के एक पद का भी आश्रय करके जो दोष लगा हो। राग और द्वेष से अतिचार लगे हो तीन गुप्ति में उल्लंघन हुआ हो चारों कषायों से विपरीत आचरण हुआ हो पांचव्रतों की पालना नहीं की हो छह जीव निकाय की विराधना की हो सातभयों और आठ मद स्थानों से नव प्रकार ब्रह्मचर्य में और दशधर्मों में अपनी विरुद्ध परिणति हुई हो और उसमें कर्मबंध हुआ हो तो उन कर्मों के नाश करने के लिए मैं कायोत्सर्ग में स्थित होता हूं—

इसके बाद—आगारसूत्र (पृष्ठ १० पर देखो) पढ़कर णमोकार मंत्र का उच्छ्वास विधि से ९ बार या १०८ बार जप देना चाहिये या इससे भी अधिक बार चिंतन करना चाहिए।

इति कायोत्सर्ग नाम षष्ठ आवश्यक कर्म।

आसही ! आसही !! आसही !!!

इति सामायिक पाठादि संग्रह।

पडिकमामि भंते राइभत्तपडिमाए णवविह बंभचेरस्स दिवा जो मए देवसिओ०   मिच्छा मे दुक्कड । ६

पडिकमामि भंते बमपडिमाए इत्थिकहायत्तणेण वा इत्थिमणोहरंगणिरिक्खणेण वा पुव्वरयाणुस्सरणेण वा कामकोवक्खरसासेवणेण वा सरीरमडणेण वा जो मए देवसिओ ˚   तस्स मिच्छा मे दुक्कड । ७

पडिकमामि भंते आरंभनिरदिपडिमाए कसायवसंगएण जो मए देवसिओ आरंभो मणसा   ˚ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं । ८

पडिकमामि भंते परिग्गहनिरदिपडिमाए वत्थमेत्त. परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ अइचारो   तस्स मिच्छा मे दुक्कडं । ९

पडिकमामि भंते अणुमणविरदिपडिमाए ज किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कद वा कारिद वा कीरंतो वा समणुमणिणदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं । १०

पडिकमामि भंते उदिट्ठविरदिपडिमाए उदिट्ठदोसबहुल अहोरदिय आहारियं वा आहाराविय वा आहारिज्जंतो वा समणुमणिणदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥११॥

॥ इति ॥

विचार विमर्श

प्राचीन पाठों की भाषा का प्रश्न

हमारे प्राचीन पाठ प्राकृत भाषा के हैं, वे सब की समझ में नहीं आते। बहुत से भाइयों का एतराज है कि बिना समझे पढना न पढने के बराबर है। पर उन्हे समझना चाहिए कि अलग २ देशवासी हम यदि अपनी २ भाषा में अनुवादित करके पाठों को बोलने लगे तो हमारी सास्कृतिक एकता ही समाप्त हो जायगी। बौद्ध मन्त्र, वेद मन्त्र, नमाज, बाइबिल अपने प्रकृत रूप में ही बोले जाते रहे हैं सो हम भी प्राचीन पाठ उसी रूप में पढना चाहिए। केवल अनुवाद कर देने मात्र से शास्त्र का रहस्य समझ में नहीं आया करता इसके लिए स्थिर चित्त और निरन्तर अभ्यास अपेक्षित है।

सामायिकमें नव कोटी या छह कोटी प्रत्याख्यान

कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करणोंसे मन वचन काय इन तीन योगों को गुणने से नव कोटी होता है नव कोटी त्याग मुनियों केसभव है और गृहस्थ के अनुमोदना बिना छह कोटी प्रत्याख्यान ही सभव है क्योंकि उसके घर और परिग्रह का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है अत पृष्ठ ६ पर सामायिक की प्रतिज्ञा में छह कोटी का पाठ ही इष्ट है इस पर विद्वानों को अपना मत स्पष्ट करना चाहिए नव कोटी प्रत्याख्यान इष्ट होतो—पृष्ठ ६ पर 'जावंणियम तिविहं तिविहेण मणसा वचसा कायेण णकरेमि ण कारेमि अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि' ऐसा बोलें ॥

प्रतिक्रमण

१-प्रतिक्रमण का समय सूर्योदय से पहले की दो घड़ी से लेकर पश्चात की दो घड़ी तक का है तथा सूर्यास्त से पहले की दो घड़ी से लेकर पश्चात् की दो घड़ी तक का है।

२-मूलाचार के अनुसार वन्दना और प्रतिक्रमण में आचार्य की आज्ञा लेना इष्ट है परन्तु पाठों में ऐसी पद्धति के सूचक वाक्य नहीं मिलते सो फिलहाल—'नमोस्तु भगवन्' बोल कर फिर कृत्यविज्ञापना का पाठ बोलना चाहिए।

३-देवसी राई प्रतिक्रमण में गोष्ठी की जरूरत नहीं, पक्खी से सवत्सरी तक के पाठ संघ में आचार्य बोलते फिर शिष्यवर्ग बोलते हैं सो आप करें तो एक प्रधान पुरुष पहले सुनावे तो दूसरे भाई बोलें—ऐसी रीति चालू करें।

४-पुरुष के व्रत न हों तो भी दोष तो लगते ही हैं, आस्रव भी होता है अतः अव्रती भी, यदि प्रतिक्रमण करे तो उसके शुभोपयोग होता ही है जैसे सुदूर मार्ग में चलता २ पुरुष कुछ देर शिर से बोझ उतारने पर सुखी होता है वैसे ही कर्मभार से दबा प्राणी प्रतिक्रमण के समय कर्म निजरा से सुखी होता है।

जैन मन्दिरों का प्राचीन आदर्श

प्राचीन युग में जैन मन्दिर निर्व्याक्षेप (शान्त) हुआ करते थे आज हालत विचित्र है शहरों के मन्दिर वैभव के केन्द्र बन गये हैं व स्वाध्याय और ध्यान योग्य प्रदेश नहीं रहे हैं। यदि हमें मन्दिरों में पूर्व आदर्श पुनः लाना है तो उनमें सादगी लाना होगा। आज कल पढ़े लिखे युवक मन्दिरजी में तेल साबुन लगाने और भी आसातना अविनय बहुत बढ़ रही है इधर भी ध्यान देना चाहिए।

जिनवाणी श्रवण महिमा पद्य

जिनवाणी के सुने से मिथ्यात्व मिटै।
मिथ्यात्व मिटै समकित प्रकटै जिनवाणी के० ।टेक।
विषय लगैं विष सम अतिखारे परसे ममता बंध छुटै
अंतर तिमिर विलीन होत उर ज्ञान ज्योति निश्चय प्रकटै ।१।
भाव कुभाव बसैं नहिं मन में कुगति पड़त प्राणी सुलटै
संतजनों की सेवा बनै मन मोहमाव से मति पलटै ।२।
नरभव का क्षण परम अमोलक सो कुकथा करते न कटै
समता परिणति जगैं निरन्तर दुखद कर्म के बंध हटै ।३।
श्रुतिपुट से जे शांतिसुधामय जिनवाणीरस सरस गटै
"दीपचंद" उन भव्यजनों का निश्चय ही भवताप मिटै ।४।